1

एक में अनेक



एक में अनेक

1

संपादन

नीलिमा सिन्हा ◇ दीपा अग्रवाल

चित्र

सुजाशा दासगुप्ता ◇ नीता गंगोपाध्याय

कवर

नीता गंगोपाध्याय

रत्न सागर

रत्न सागर प्रा० लि०
विराट भवन, मुखर्जी नगर
कमर्शियल कॉम्पलैक्स, दिल्ली 110009
फोन : 7122505, 7216094
ब्रांच : 24 रामानाथन स्ट्रीट, टी. नगर,
मद्रास 600017 • फोन : 4346325

पहला संस्करण 1995

ISBN 81-7070-189-9

भाषा एक रूप अनेक

हिन्दी भाषा एक है लेकिन इसके रूप अनेक हैं। इसी विविधता की एक झलक इस संकलन में दी गई है – कहानियों के मनोरंजक माध्यम से।

हिन्दी के विभिन्न रूपों के अतिरिक्त अलग-अलग अंचलों के अनूठे रंग सुन्दरता से उभर आए हैं। उनके रीति-रिवाज, वेश-भूषा, निजी समस्याएँ – सब दर्शाई गई हैं।

दो खण्डों में संकलित कहानियाँ उत्तर भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि पाठकों को बम्बइया हिन्दी और दक्खिनी बोली से भी परिचित कराती हैं। इस विविधता से ही संकलन का नाम सार्थक होता है – एक में अनेक।

नीलिमा सिन्हा

दीपा अग्रवाल

विषय सूची

रात के बारह बजे

नीलिमा सिन्हा

"हम ना होखे देब ई मारकाट।" कक्षा में हड़कंप मच गयी। "शांत, चुप हो जाओ सब।" मास्टर जी ने बुलाया, "कौन मारकाट की बात कर रहे हो, भुवनेश्वर सिंह? घबराओ नहीं, ठीक से बताओ।"

"मकइया रे, तोर गुन गइलो न जाला।" पूरी मस्ती में था भुनेसर। खेत को पाटते हल की चौकी पर शान से सवार वह एक पल में मिट्टी के ढेर पर ऊँचा जा चढ़ता तो दूसरे ही क्षण गड्ढे में धँस जाता, मानो हवा में तैरती एक पतंग हो।

"आगे-आगे हर चले, पाछे से बुआला।"

बाबूजी बैलों को हाँक रहे थे। एक की पीठ थपथपा, दूसरे की पूँछ सहला उन्होंने थके जानवरों को आगे बढ़ाया। उनका साँवला शरीर पसीने से भीगा था और कनपटी पर आये सफ़ेद लटों से बूँदें टप-टप झुर्रीदार गालों पर लुढ़क रही थीं। यूँ तो भुनेसर का बदन भी झुलस रहा था, पर उसे भला क्या परवाह? हल पर चढ़ ऊबड़-खाबड़ मिट्टी को बराबर करने का मजा कोई तिलंगी उड़ाने से कम थोड़े था। नई खोदी मिट्टी की सोंधी महक भी बहुत भा रही थी उसे। अब उसमें मकई के बीज छींटेगा वह। कुछ ही दिन में अंकुर फूट आएँगे।

"तौना पाछे हेंगा चले, तीन बेर सुहाला।"

तीन बार खुरपी होगी, पौधों में बाल आएँगे और मोटे-मोटे दानें बैठेंगे। उन्हें उबाल कर भात पकाओ या कूट-पीस कर रोटी सेंको।

"भात करे फुदुर-फुदुर, रोटी छितराला।"

भात की याद आते ही भूख लग आई उसे। दौड़कर उसने बेर के पेड़ पर टँगी पोटली उतारी। आज माई ने सत्तू की लिट्टी दी थी। केले के पत्ते में लिपटे सरसों के साग से तेल चू रहा था। खूब चाट-चाट कर खाया दोनों ने। बाबूजी थक कर चूर थे, वहीं घास पर पसर गये बेचारे! भइया ने बीमारी का बहाना जो कर दिया था, तभी तो उसे आना पड़ा था आज बाबूजी के साथ।

"ए लइका, तनी सुनअ।" एकाएक एक दबी आवाज़ सुन वह चौंका। अचानक किसी ने लपक कर मुँह पर हाथ रख दिया, "हिश! बतावअ त, राम खिलावन के डेरा केने बा?"

"राम खिलावन? जिनकर बड़का-बड़का मूँछ बा? अरे, ऊ त हमार भइया बाड़न। आज तबीयत सुस्त रहे, एही से ना अइलन।" भुनेसर बोला।

"तोहार भइया? अच्छा सुनअ, जाके कह दीह – शिव मंदिर में, रतिया के बारह बजे। अऊर सुनअ, केहू दूसर के ना कहिह ई बात। अगर मुँहवा खोलले त ···" आगंतुक ने ज़ोर से चिकोटी काटी और नौ-दो-ग्यारह हो गया।

"माई हो माई!" भुनेसर ने मुँह बनाते हुये बाँह मली। बाबूजी के खर्राटे बंद हो गये थे। मन हुआ, सब बता दे, पर चिकोटी की याद आते ही वह रुक गया।

जब वह घर पहुँचा तब सूरज देवता पीपल के पेड़ की ओट से आखिरी बार झाँक कर बिदा ले रहे थे। शाम हो गई थी पर भइया अब भी भीतर आंगन में खाट पर पड़े झपकी ले रहे थे। धोती घुटनों तक सरक आई थी और मुँह खुला था।

"राम भइया।" वह नज़दीक जाकर बोला।

"क ··· का? कौन?" वे हड़बड़ा कर उठे और झट धोती संभाली।

"शिव मंदिर में, रात के बारह बजे।" कान से मुँह सटा कर भुनेसर फुसफुसाया। भइया ऐसे उछले मानो साँप ने डँस लिया हो।

माई चूल्हे के पास बैठी हँसुए से तरकारी काट रही थी। भइया को ऐसे उछलते देख वह घबरा गई, "का भइल हो? का बात बा?" तरकारी, हँसुआ झटक वह उठ खड़ी हुई।

"कुच्छो ना माई, ई भुनेसरा के खाली बदमासी सूझेला। चलअ अभी बताईं।" भइया उसे खींच कर बाहर अंधियारे में ले गये। भुनेसर ने खेत में बीती सारी बातें उन्हें बता दीं।

"हिश् ··· खबरदार, मुँहवा बंद रखिह। समझलअ?" राम भइया ने होंठ पर उंगली रखते हुये चेतावनी दी।

अब तो भुनेसर के पेट में बात पचने से रही। वह दौड़ा-दौड़ा अपने मित्र हरसुख के घर गया और सारी बातें बता दीं।

"बाबा रे, शिव मंदिर। ऊ त भूत के डेरा बा। याद नइखे ···" हरसुख ने याद दिलाई, "पार साल कइसे मोटका लाला जी के पटकले रहे भूत? घिग्घी बँधवा दिहल रहे उनकर ··· चार दिन खटिया पकड़ले रहलन ··· मुँह से बोलिये ना निकलत रहे ··· सुन्न आँख से टुकुर-टुकुर छप्पर ताकत रहलन ···।"

"छिः! तुहूँ बहुत डरपोक बाड़अ। माट्टर जी कहेलन, भूत-परेत कुच्छो ना होला। चलअ, हमहूँ चलीं ··· तनी देखीं का होला।" भुनेसर ने कहा।

"ना बाबा, हमरा डर लागेला।" हरसुख ने घबरा कर दोनों हाथ कान पर रख लिये।

भुनेसर के हठ के सामने उसकी एक न चली और रात में चोरी-छिपे मंदिर पहुँचने की योजना बन गई।

भुनेसर चुप था। कैसे बताये वह रात की बात! कैसे बोले कि वह सब कुछ जानता था!

"जो, ··· जात काहे नइखे?" जब राम भइया ने खीझ कर डाँटा तो उसे होश आया। झटपट तैयार हो, बस्ता उठा, वह पाठशाला भागा। गाँव के चौराहे पर हरसुख से भेंट हो गई। दोनों दुखी मन से पाठशाला पहुँचे।

एक कोस दूर उनकी पाठशाला थी। इसी में आसपास के चार-पाँच गाँवों के बच्चे अपनी हाई स्कूल की शिक्षा पाते थे। दो कोस दूर पारसपुर गाँव से कलुआ, हरिया, खदेड़न, मिनवा इत्यादि भी यहाँ आते थे। कलुआ हमेशा अपनी किताब में आँखें गड़ाये रहता। वह बहुत ही मेहनती था और हर सवाल का जवाब तुरंत देता था। मास्टर साहब उससे बहुत खुश रहते थे।

राम भइया और उनके साथी कलुआ के ही गाँव पर हमला करने जा रहे थे। 'कलुआ भी तो उनकी चपेट में आ सकता है,' यह सोचते ही भुनेसर का जी घबरा उठा।

"भुवनेश्वर सिंह, सुना नहीं तुमने? मेरे सवाल का जवाब क्यों नहीं देते?" एकाएक मास्टर साहब के कड़े स्वर ने उसे चौंका दिया।

"कअ ··· आ?" वह हकलाया। उसका तो ध्यान ही कहीं और था।

तभी पीछे से किसी ने धीरे से पीठ थपथपाई। "हुमायूँ की मौत कब हुई, पूछ रहे हैं। बोलो ··· पंद्रह सौ छप्पन में।" कलुआ ने फुसफुसाकर बताया।

कितनी मदद करता था कलुआ। उसे और दूसरे लड़कों को भइया के गुस्से से बचाना ही होगा। पर कैसे? पुलिस में रपट किया तो उसके ही भइया पकड़े जाएँगे। नहीं, यह कैसे कर सकता था वह? भाई को रोका जाए ··· पर रोकने की हिम्मत उसमें कहाँ? तो फिर? कलुआ को हमले की चेतावनी दी जाए। पर तब तो दोनों

गाँवों में हो जाएगा महायुद्ध। महायुद्ध को रोकना ही होगा। पर फिर वही बात ··· कैसे?

"भुवनेश्वर सिंह! तुम्हारा ध्यान आज कहाँ है?"

भुनेसर ने मास्टर जी की ओर देखा। उनकी आँखों में चिंता और सहानुभूति की झलक दिखी। एकाएक वह दृढ़ स्वर में बोल पड़ा, "हम ना होखे देब ई मारकाट।"

कक्षा में हड़कंप मच गयी।

"शांत, चुप हो जाओ सब।" मास्टर जी ने डाँट कर सबको शांत कराया, फिर भुनेसर को अपने पास बुलाया, "कौन मारकाट की बात कर रहे हो, भुवनेश्वर सिंह? घबराओ नहीं, ठीक से बताओ।"

धीरे-धीरे, रुक-रुक कर, परन्तु साफ़ शब्दों में भुनेसर ने अपनी उलझन कक्षा के सामने खोल दी। सुन कर लड़के स्तब्ध हो गये। मास्टर जी भी गंभीर और चिंतित दिखने लगे।

"किसी भी समस्या का समाधान मारपीट से नहीं बातचीत से निकालना चाहिए।" उन्होंने स्पष्ट किया, "इन नौजवानों को अवश्य रोकना होगा।" वे विचारों में खो गये।

"एक ठो तरकीब है, बताईं?" एकाएक भुनेसर ने कहा।

उसकी तरकीब सुन सब खुश हो गये।

अमावस्या की रात, घोर अंधकार छाया था। पारसपुर गाँव के निकट झाड़ी के पीछे छिपे भुनेसर तथा हरसुख ठंड में ठिठुरने लगे। ठंड के साथ भय भी शरीर को कँपा दे रहा था। कहीं दूर से आती सियार की 'हुआ-हुआ' वातावरण को और भयावह बना रही थी।

"बारह बाज गइल।" भुनेसर ने व्यग्रता से कहा।

"हिश् ··· सुनअ, घोड़न के टाप। ऊ लोग आवता।" हरसुख ने चेतावनी दी।

"एक ठो, दू ठो ··· आठ, दस ठो अमदी।' भुनेसर ने टापों की आहट से अनुमान लगाया। उसने मुँह में उंगली डाल धीमी-सी एक

सीटी दी। पास की झोपड़ी से वैसी ही सीटी ने उसका उत्तर दिया।

घोड़ों की टाप निकट आ गई। दूर पीपल के वृक्ष की ओट से आठ-दस परछाइयाँ तेज़ी से प्रकट हुईं। निकट आने पर भुनेसर ने देखा, उनके मुँह पर तौलिये लिपटे थे, ताकि वे पहचाने न जाएँ।

"धाँय-धाँय!" एक घुड़सवार ने बंदूक उठाकर हवा में फायर किया। पीछे से तीन-चार सवार नीचे कूद सामने की झोपड़ियों की ओर लपके।

"किवाड़ खोल!" एक ने दरवाजे पर लात जमाई।

उसी क्षण झाड़ी के पीछे से हरसुख और भुनेसर बाहर निकल आये। उधर गाँव की हर झोपड़ी, हर मकान के किवाड़ एक साथ खुल गये। अंदर से निकले झुंड के झुंड छात्र, सभी के हाथ में जलती मोमबत्तियाँ या लालटेनें थीं ताकि युवक उन्हें पहचानने में भूल न करें।

घुड़सवारों ने हथियारों की ओर हाथ बढ़ाए ही थे कि सामने के दृश्य पर उनकी नज़रें गईं। यह क्या? जगमगाते प्रकाश में एक भी चेहरा पारसपुर गाँव के आदमी का नहीं दिखा। ये तो उनके अपने गाँव के बेटे-बेटियाँ थे। कोई किसी का भाई-भतीजा था तो कोई किसी की बहन-भतीजी। लालटेन की रोशनी राम खिलावन के साथी मोहन सिंह के भाई हरसुख पर पड़ी जो कलुआ का हाथ थामे ऐसे डटा था मानो युवकों को चुनौती दे रहा हो, 'आओ, करो जो करना हो।' उधर मोमबत्ती ने भुनेसर का चेहरा चमकाया। खदेड़न को ओट में लिये वह ऐसे डटा था मानो कह रहा हो, 'आगे तो बढ़े कोई।'

दूसरे बच्चों ने दौड़ कर किवाड़ छेंक लिये, झोपड़ियों को घेर लिया और वे गलियों में फैल गये।

पीपल के नीचे फैले अंधेरे ने युवकों के चेहरे ढँक दिये थे पर उधर छाई चुप्पी सब बता रही थी। वे ठिठके खड़े थे, पाँवों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था, ऊपर उठे हाथ नीचे आ गये थे।



"हम सब साथ ही पढ़ीला, खेलीला ··· कभी-कभार झगड़ा भी हो जाला हमनी में।" कलुआ ने बात बढ़ाई।

"मास्टर जी कहले बाड़न ··· मारपीट से ना, बातचीत से हल निकाले के चांही।" भुनेसर और हरसुख ने एक साथ कहा।

युवकों के मुँह अब भी बंद थे। भुनेसर ने कनखी से भइया को देखा, 'क्या करेंगे युवक? कहीं उनके इस प्लान ने आग में घी का काम तो नहीं किया? भइया का क्या ठिकाना? गुस्से में कुछ भी कर सकते हैं वे।' भुनेसर सोच रहा था। एक-एक क्षण एक-एक घंटे की तरह बीतने लगा। उधर भाई लोग माटी के मूरत बने थे।

"मारो गोली, राम खिलावन। खड़े क्यों हो, मोहन सिंह? हाथ उठाओ अपने।" तभी सामने की झोपड़ी से मास्टर जी बाहर निकल आए, "मैंने तुमको भी पढ़ाया और इन बच्चों को भी शिक्षा दी। पर किसने ग्रहण की असली शिक्षा, तुम सबने या इन बच्चों ने?"

अब कहीं घुड़सवारों में सुगबुगाहट हुई। सकपकाई आँखें झुक गईं, बंदूक और हथियार पीछे हो गये। एक-एक कर अपने घोड़ों पर सवार हो सब वैसे ही चुप्पी साधे खिसक चले।

घोड़ों की टाप खत्म होते ही दूर खेत में छिपे पारसपुर निवासी वापस दौड़ आये। बच्चों को उन्होंने गले लगा लिया।

भुनेसर, हरसुख, हरिया, खदेड़न, कलुआ, बबुनी, मिनवा इत्यादि के हाथों के दीपों ने अंधेरी रात में प्रेम का उजाला फैला दिया था।

दो पहेलियाँ

प्रतिभा नाथ

"हुणी मैं कियां बेट्ठी सकनी आं?
मिन्जो तां कूल्ले पर पाणी भरने जाना ए। तूं बी आई जा
मेरे कन्ने। पाणी भरी के असां घर चली पौघियाँ, कन्ने
गल्लं बी करदियाँ जाँघियाँ।"

कार्तिक का महीना था। ठंडी धूप दूर-दूर तक पहाड़ों पर फैली हुई थी। जहाँ तक नज़र जाती, सीढ़ीनुमा खेत ही दिखाई पड़ते थे। कहीं-कहीं छोटे-छोटे पहाड़ी मकान थे जिनकी छतों पर सुनहरे रंग की मकई सूख रही थी।

कोई ग्यारह बजे का समय होगा। स्कूल की छुट्टी थी। गाँव के सरपंच की बेटी शीला अपने घर के पीछे बैठी अकेली ही गुट्टक खेल रही थी। गुट्टक के गोल-गोल चिकने पत्थर धूप में चमक रहे थे। ये पत्थर शीला गाँव के चश्मे की तह से चुन कर लाई थी। वह चश्मा कहीं दूर पर्वत की कन्दरों से फूट कर, ठंडा जल लिये, पत्थरों को लाँघता, फेन उछालता, मीठे स्वर में गाता, पूर्व दिशा से गाँव में प्रवेश करता और पश्चिम सीमा के पार हो जाता था।

अभी शीला ने गुट्टक के पत्थर दो-तीन बार ही उछाले होंगे कि सामने ज़मीन पर एक परछाईं पड़ी और किसी ने हँस कर कहा, "यह

अकेले-अकेले गुट्टक क्या खेल रही हो? मेरी पहेली बूझो।"

शीला ने सिर उठाया तो देखा कि उसकी सहेली लच्छी सामने खड़ी है। हाथ में एक बाल्टी थी, सिर पर एक छोटा-सा घड़ा। लच्छी मुस्करा रही थी। उसे देख शीला भी मुस्करा दी और बोली, "हाँ-हाँ, बुझाओ पहेली।"

लच्छी ने कहा, "तो सुनो। दिने भरोइयां, रात्ती खाल्ली।"

शीला बोल उठी, "पहले यहाँ बैठो, फिर मैं पहेली बूझूँगी।"

लच्छी बोली, "हुणी मैं कियां बेट्ठी सकनी आं? मिन्जो तां कूल्ले पर पाणी भरने जाना ए। तूं बी आई जा मेरे कन्ने। पाणी भरी के असां घर चली पौघियाँ, कन्ने गल्लं बी करदियाँ जाँघियाँ।"

शीला मज़ाक में मुँह बिचका कर लच्छी के साथ हो ली। फिर बोली, "हाँ, तो क्या थी वह पहेली?"

लच्छी ने पहेली पूछी, "दिने भरोइयां, रात्ती खाल्ली।"

शीला बोली, "रात्ती खाल्ली तो मैं समझ गई। परन्तु यह 'दिने भरोइयां' क्या हुआ भला?"

लच्छी ने जवाब दिया, "इसका मतलब है – दिन को भरी होती है।"

शीला कहने लगी, "कुछ अता-पता बताओ।"

लच्छी ने मुस्करा कर कहा, "सभी लोग अपने घर के आस-पास लगाते हैं।"

शीला ने पूछा, "इन पर कुछ उगाते हैं क्या?"

लच्छी बोली, "नहीं तो।"

शीला ने पूछा, "फिर क्या यह सजावट की चीज़ है?"

लच्छी बोली, "अरे नहीं।"

शीला ने कुछ सोच कर कहा, "अब समझी। इन पर कुछ लटकाते हैं। क्यों, ठीक है ना?"

लच्छी ने उत्तर दिया, "हाँ।"

शीला ताली बजा कर बोली, "फिर तो तुम्हारी पहेली का मतलब है, कपड़े सुखाने की रस्सी।"

लच्छी ठहाका लगा कर हँसी, "ठीक बोली, ठीक बोली।" और साथ ही वह भाग खड़ी हुई।

आगे-आगे लच्छी और पीछे-पीछे शीला। दोनों कूल तक जा पहुँचीं। जैसे ही लच्छी ने बाल्टी भरी, शीला ने बाल्टी उठा ली और दोनों लड़कियाँ बातें करती वापस लौटीं।

शीला ने कहा, "क्या बात है लच्छी? तुम्हारे घर तक कूल का पानी क्यों नहीं पहुँचता?"

लच्छी ठंडी साँस भर कर बोली, "क्या बताऊँ शीला, यह भी एक पहेली है। जब तक यह गाँव में रहता है, पानी से भरपूर होता है। हमारे घर तक जाने के लिये कूल को ढलान से उतरना पड़ता है। बस इस ढलान पर कूल को न जाने क्या हो जाता है। धीरे-धीरे इसका पानी सूखना शुरू हो जाता है। हमारे खेतों तक पहुँचने से पहले ही, यह बिल्कुल सूख जाता है।"

शीला ने पूछा, "तुम्हारे पिता जी क्या कहते हैं?"

लच्छी बोली, "वे क्या कहेंगे बेचारे। आज से कोई साठ साल पहले मेरे दादा जी कांगड़ा से यहाँ शिमले के पास आये थे। उन्होंने ही यह ज़मीन खरीदी, खेत बनाए, खेती-बाड़ी की। जब तक वे जीते रहे, खेती का काम बड़ा अच्छा चलता रहा। परन्तु उनके गुज़रने के बाद से ही हालत बिगड़ने लगी। पानी कम होने लगा। खेती सूखने लगी। इधर दो साल से तो यह हालत हो गई है कि मुश्किल से अपने खाने भर को मकई उगा पाते हैं।"

शीला कहने लगी, "तुम्हारे पिता जी को बड़े दिनों से देखा नहीं।"

लच्छी ने उसे बताया, "अब तो वे शिमला में मज़दूरी करते हैं। महीने में एक बार घर आते हैं, वह भी एक दिन के लिए।"

शीला ने पूछा, "और लोग क्या कहते हैं?"

लच्छी ने उदास होकर कहा, "कुछ न पूछो, शीला। सब कहते हैं, किसी ने हमारे ऊपर जादू-टोना कर दिया है।"

शीला को आश्चर्य हुआ, "सच!"

"तो और क्या? जादू ही किया होगा नहीं तो हम इस तरह मुसीबत में क्यों फँस जाते?"

दोनों लड़कियाँ लच्छी के घर तक पहुँच चुकी थीं। दरवाज़ा खोल कर वे अन्दर चली गईं। घर में अंधेरा था। जब बाल्टी ज़मीन पर रखने की आहट हुई तो एक कोने से लच्छी की माँ की आवाज़ आई, "लच्छी तूं आई गई?" वे लेटी हुई थीं।

लच्छी ने उत्तर दिया, "आं, मैं आई गई।"

"अपने ताई तूं खिचड़ी बनाई लै।" माँ ने कहा।

लच्छी ने कहा, "तुसां नई खानी? थोड़ी दई खाई ल्या।"

माँ बोली, "अच्छा। तूं बनाई लै फिर दिक्खी लैंगे।"

लच्छी ने अंगीठी उठाई। घर के बाहर रखी। फिर उपले-लकड़ी लगा कर उसे सुलगाने लगी, तो शीला ने धीरे से पूछा, "माँ कब से बीमार हैं?"

लच्छी ने कहा, "उनकी तबीयत अब ठीक नहीं रहती। जब से पिता जी शिमला गए हैं, माँ बीमार ही रहती हैं।"

शीला ने पूछा, "वैद्य जी क्या कहते हैं?"

"वे कहते हैं, उनको सदमा पहुँचा है। जब खेतों में पानी आ जाएगा और पिता जी फिर से घर में रहने लगेंगे, तो माँ की तबीयत भी ठीक हो जाएगी।"

शीला बोली, "कोई दवाई नहीं बताते?"

"बताते तो हैं, बधाओनी बूटी। गोल चिकने पत्ते होते हैं उसके, लाल धारी वाले। कहते हैं वह नीचे ही कहीं खड्ड में लगती है। मैं एक दिन गई थी बूटी ढूँढने, पर मुझे तो मिली ही नहीं।" लच्छी ने कहा।



शीला बोली, "चलो, आज दोपहर को हम दोनों चलें। माँ को खाना खिला कर चले चलेंगे।"

दोपहर हुई तो खाना खा कर लच्छी और शीला हाथ में हाथ दिये पगडंडी के रास्ते नीचे खड्ड में उतर गईं। बड़ी देर तक इधर-उधर ढूँढती रहीं, पर बधाओनी बूटी कहीं नहीं मिली। दोपहर ढल गई, सूरज पहाड़ों की ओर झुक गया, तो लच्छी ने कहा, "हमें जल्दी घर जाना चाहिए। माँ को चाय देनी है।"

शीला बोली, "चलो हम नये रास्ते से वापस चलें। पगडंडी को छोड़ कर पहाड़-पहाड़ से चढ़ जाएँगे।"

दोनों लड़कियाँ देवदार के पेड़ों के एक झुरमुट से निकल कर पहाड़ पर चढ़ने लगीं। कुछ देर चढ़ने के बाद शीला बोली, "अरे लच्छी, यहाँ तो घास एकदम हरी हो गई है। झाड़ियाँ भी बहुत हैं। अरे, देखो तो सही, यहाँ तो पानी का चश्मा भी है।"

लच्छी आगे बढ़ी। उसने देखा कि पहाड़ में एक गड्ढा था। गड्ढे के ऊपर एक चश्मा बह रहा था। चश्मे के पानी से गड्ढा भरा हुआ था और गड्ढे के पास इतनी बधाओनी बूटी लगी थी कि लच्छी ने अपनी झोली भर ली, फिर भी बूटी खत्म नहीं हुई।

लच्छी का चेहरा खुशी से चमक रहा था। हँस कर बोली, "बस इतनी बूटी एक सप्ताह के लिये काफ़ी होगी। तब तक यह बाकी बूटी भी बड़ी हो जाएगी, फिर इसे तोड़ कर ले जाएँगे।"

दोनों लड़कियाँ हँसती-हँसती पहाड़ पर चढ़ गईं और कुछ ही देर में अपने गाँव पहुँच गईं। लच्छी की माँ ने बूटी का सेवन शुरू कर दिया। उनकी तबीयत में सुधार भी होने लगा पर वे अब भी उदास रहती थीं।

कार्तिक का महीना समाप्त हो चला था। गाँव में जितने भी दाड़ू के पेड़ थे उन सब के फल गाँव वालों ने उतार लिए थे। इन फलों को चीर कर दाने धूप में बिछा दिए थे। इन्हीं दानों से अनारदाना बनता था। दाड़ू के छिलकों को पानी में उबाल कर खाकी रंग बनाया जाता था। शीला का छोटा भाई संजु इधर-उधर खेल रहा था। उसे शैतानी सूझी, वह लोटा भर-भर कर रंग कूल में डालने लगा। कूल का पानी काला हो गया। गाँव वाले सब भागे-भागे आए। संजु को सब ने बहुत डाँटा। शीला ने सोचा, 'मेरे पिता जी तो अभी खेत पर गए हैं। वापस आएँगे तो संजु को बहुत पीटेंगे। इसे मैं खड्ड में ले जाती हूँ।'

शीला भागी-भागी लच्छी के घर आई। लच्छी बोली, "मैं तो खड्ड में जा ही रही हूँ, माँ के लिये और बूटी लानी है।" बस फिर क्या था? दोनों लड़कियाँ संजु को साथ लिये पगडंडी के रास्ते खड्ड में उतर गईं। अब तो उन्हें चश्मे का रास्ता भी आ गया था। वे जल्दी ही वहाँ पहुँच गईं। चश्मा पहले की तरह बह रहा था। बधाओनी बूटी का झाड़ पहले से भी बड़ा हो गया था।

लच्छी बूटी तोड़ने के लिये आगे बढ़ी तो एक दम से चिल्ला उठी, "शीला, शीला, इधर तो आओ।"

शीला ने देखा तो हैरान रह गई। पहाड़ में जो गड्ढा था उसका पानी आज बिल्कुल काला था। चकित होकर बोली, "अरे, यह क्या? पिछली बार तो यह पानी बिल्कुल साफ़ था। आज काला कैसे हो गया?"

लच्छी ने कहा, "यह तो वैसा ही रंग है जैसा दाड़ू के छिलकों से बनाया जाता है। पर यह रंग यहाँ कैसे आ गया?"

शीला का भाई भी बोल उठा, "मैं तां सारा रंग कूल्लेच पाया था। इत्थू कियां आई गया सै?"

लच्छी बोली, "चलो-चलो, जल्दी यहाँ से चलो। मुझे बड़ा ज़रूरी काम है।"

शीला ने पूछा, "क्या काम है?"

लच्छी ने कहा, "बाद में बताऊँगी। अभी तुम चलो तो सही।"

बधाओनी बूटी तोड़ कर तीनों जल्दी-जल्दी वापस भागे। लच्छी अपने घर गई। उसकी माँ सो रही थी। लच्छी ने रसोई घर से हल्दी की बोतल उठाई और जल्दी से बाहर दौड़ी। शीला का हाथ पकड़े वह ठीक उसी जगह गई जहाँ से कूल का पानी सूखना शुरू हो जाता था। लच्छी ने हल्दी की बोतल कूल में डाल दी और शीला को खींचती हुई दुबारा नीचे खड्ड में ले गई।

लच्छी चश्मे के पास पहुँची जहाँ गड्ढा पानी से भरा हुआ था। उसका पानी अब भी हल्के से काले रंग का था परन्तु चश्मे के पानी में हल्दी का रंग साफ़ झलक रहा था। शीला चिल्लाई, "अरे, यह हल्दी तो तुमने ऊपर से कूल में डाली थी। इसका मतलब है, कूल का पानी इधर आ रहा है।"

"हाँ, कूल का पानी हमारे घर जाने के बजाए इधर खड्ड में आ रहा है।" लच्छी बोली।

"तो यह है तुम्हारी पहेली का उत्तर।" शीला खुशी से बोल उठी।

थोड़ी ही देर में बात पूरे गाँव में फैल गई। सब लोग इकट्ठे हो गए। शीला के पिता जी भी वहाँ मौजूद थे। सबने मिल कर कूल की जाँच की तो देखा कि ढलान के नीचे, पहाड़ के अन्दर ही अन्दर चूहों ने बड़ी-बड़ी सुरंगें खोद रखी थीं। पानी सुरंगों के रास्ते नीचे चला जाता था, कूल में नहीं जाता था।

शीला के पिता गहरी सोच में पड़ गये। कहने लगे, "सुरंगों को बन्द करना तो असंभव है, चूहे फिर से खोद लेंगे। हमें कूल की तह को ही पक्का बनाना होगा, ताकि पानी नीचे न जाए।"

बड़े सोच-विचार के बाद उन्हें ध्यान आया कि प्लास्टिक की बड़ी-बड़ी चादरें ठीक रहेंगी। उनके पास कुछ ऐसी चादरें थीं जो सर्दी के मौसम में नन्हे पौधों को ढँकने के काम आती थीं, उन्हें पाले से बचाने के लिए। शीला के पिता ने ऐसी ही कई चादरें लेकर कूल की तह में बिछवा दीं, ठीक उसी जगह पर जहाँ सुरंगें बनी हुई थीं। चादरों को बड़े-बड़े पत्थरों से दबा दिया गया, जिससे वे अपनी जगह से हिल न पाएँ। चादरें लगाने की देर थी कि कूल का पानी कल-कल करता ढलान से नीचे उतरा और बह चला लच्छी के घर की ओर।

लच्छी और शीला तो खुशी के मारे नाचने लगीं। दो दिन बाद लच्छी के पिता भी आ गए। पूरी बात सुनी तो उनकी भी आँखें खुशी से भर आईं। और, लच्छी की माँ का तो क्या कहना। वे बार-बार यही दुहरातीं, "पानी आई ग्या। शुकर है मालके दा, साडे खेत्तां बिच्च पानी आई ग्या।"

गुड़-मंडी में

इरा सक्सैना

'चूना लगा रिया स, सत्ताईस के चौबीस धड़ी और
दो सौ सत्तर के दो सौ चालीस रुपये? हम के भोंदू दिक्खें।'
धनपत मन ही मन बोला। ग्राहक से कुछ न बोल
मुस्कराते हुये नोट मोड़ जेब में रख लिये।

"हुर्र··· रै ··· रै ··· रै ··· रै ···।" अपने बिलखते बालक से भी ऊँची आवाज़ में जाटनी उसे चुप कराने लगी। धनपत ने तमक कर झटके के साथ किताब बंद की, कलम-कापी एक तरफ़ सरका, उठ खड़ा हुआ।

"इब किंगे कू पिढ लूँ, ताऊ। छोरा रोबै सो रोबै, जाटनी वा को चुप कराने कू दहाड़े है। सारे गाम में सुन लौ हुर्र ··· रै ··· रै।" नकल करते हुए मुँह बिगाड़ कर धनपत बोला।

हुक्का गुड़गुड़ाते हुये ताऊ शायद मुस्कराये, पर घनी दूधिया मूँछों की छाया में उनकी मुस्कान ढक गई। इससे पहले कि वह कुछ बोलें, माथे के बल गहरे कर धनपत ने कहा, "जा रिया हूँ इस 'रै ···रै' से दूर। बड़ी सड़क की मेड़ पर पिढ लूँगा।" जल्दी से किताबें समेट धनपत गाँव के चौपले की ओर बढ़ गया। उसे तो जैसे बहाना मिल गया था।

"मेड़ पर के पढेगो?" नथुने फुलाते हुये ताऊ बुदबुदाये। धनपत को भर्राती आवाज़ में पुकारा, "उरे, धर जा पोथियाँ इगे को, होर! सुनियो, बदलू संग घणी देर मत ना डोलियो।"

पलभर को धनपत ठिठक गया। ताऊ कैसे मन की बात ताड़ लेते हैं। बड़ी सड़क जाकर कौन-सा वह पढ़ाई करता और वो भी हिसाब। वो तो ताऊ के बार-बार कहने पर किताबें खोलकर बैठ गया, वरना हिसाब किसी भूत-प्रेत, अला-बला से कम नहीं। ताऊ थे कि बस हिसाब पर ही ज़ोर देते। "किसान का पूत स हिसाब ही फलैगो, इंगरेज्जी मा गिटपिटा के कौन सा बीडीओ अफसर बाबू बणाना स।" वे कहा करते।

"हैंइच," गर्दन को झटका देकर धनपत ने पढ़ाई की बात मन से निकाल नहर के बहते पानी के साथ बहा दी। अब तो समय था अपने दोस्त के संग थोड़ी कंचेबाज़ी, ठिठोली-ठट्ठा करने का, बड़ी सड़क पे। 'हुर्र ··· रै ··· रै ···' का राग लगा चौपला पार कर दौड़ पड़ा खेतों की तरफ।

उसका गाँव दिल्ली-मंसूरी हाइवे से हटकर ट्रकों-कारों की रफ़्तार से परे हरी-भरी फसलों से घिरा, आम के बगीचे की ओट में छिपा हुआ था। हाइवे को ही गाँव वाले बड़ी सड़क कहते।

गाँव में कोई दूसरी सड़क भी तो नहीं थी। एक कच्चा, गड्ढेदार संकरा रास्ता गाँव को बड़ी सड़क से जोड़ता था। धनपत को दनदनाती गाड़ियों की रफ़्तार, ट्रैक्टरों की गड़गड़ाहट और दूर खेतों से उठती 'फुक-फुक-फुक' ट्यूबवेल की पुकार बड़ी लुभावनी लगती। दूर से आती गाड़ी की आवाज़ सुनकर सर्र से सड़क पारकर बहादुरी दिखाने में और सीटी बजाकर दौड़ती गाड़ियों के संग होड़ लगाने में कितना मज़ा आता। कभी अचानक गाड़ी की 'पों-पों' सुनकर घबराये साइकिल सवार की बिगड़ती-थिरकती चाल, और फिर से मिट्टी में उसे लोटम-लोट होते देख, वह जी खोल कर ठट्ठा करता। पाठशाला के

बाद बहुत से लड़के वहीं डोलते दिखाई पड़ते, पर धनपत तो अक्सर पाठशाला न जाकर सारा दिन वहीं बिता देता।

दूर से ही बदलू डंडे से गुल्ली पर निशाना साधते दिखाई दिया।

"नुके ताऊ ने घेर लिया।" धनपत बोला। उछलकर नाला फाँद उसने हाथ बढ़ाया, "ला, दे म्हारी बेर।"

बदलू आँखें मिचमिचा कर मुस्कराया, "ताऊ से पीच्छा छुड़ाया, इब थारा बापू रपट लेवे क़ आ गया।"

धनपत ने पलट कर देखा, आम के बागों वाले मुल्ला जी के साथ उसके पिता आ रहे थे। "धत् तेरे की," वह वहीं उकड़ूँ बैठ गया।

"हुरै, धन्पत्ती, धन्पत्ती हो।" बापू ने आवाज़ लगाई।

"हमबै।" धनपत ने अनमने भाव से उत्तर दिया।

"हमबै," बापू झुँझलाया और डपटकर बोला, "उरै कू आ।"

अपने दोस्त को साथ में खींचता हुआ धनपत बापू के सामने जा खड़ा हुआ।

गला खंखार कर बापू ने कहा, "तालाब पे थारा मास्टर भैंसन हैंका रिया स।" रुककर वह फिर खाँसे। उधर धनपत की साँस गले में अटक गई। ज़रूर मास्टर जी ने शिकायत की होगी। मारे गये। सज़ा की आशंका से उसकी गर्दन झुक गई।

"मन्नै कह दई, धन्पत्ती कल पाठशाला ना आवेगो। चौधरी की आढ़त पर बैठियो, समझा। चौधरी सहर जावेगो म्हारे संग, नई टैम्पो गाड़ी लेने। सई?" बापू ने समझाया।

"सच्चोई!" वह खुशी से उछल पड़ा। दुकान पर बैठने में उसे बहुत अच्छा लगता। न पढ़ना, न लिखना। कभी माल तौल लो, कभी अनाज की ढेरी समेट दो और आते-जाते लोगों से बतियाते रहो।

"जादा मत नी फैल, लल्लू? यो थारी ट्रेनिंग स, पास हुआ तब गुड़-मंडी में बैठेगो। नई तो घर पे सानी करियो भैंसियन की।" बापू ने हँसकर चेतावनी दी।

"देखियो, नम्बर मिलेंगे फुलमफुल। बापू, तुम फिकर न करो। यो म्हारा यार दबड़ू भीं म्हारे संग बैठेगो।" धनपत उछलकर बोला और मुड़कर बड़े प्यार से पूछा, "चौं बे दबड़ू?"

बदलू ने उत्साहित हो हामी भर दी।

दोनों सुबह-सवेरे ही आढ़त पर पहुँच गये। आढ़त बड़ी सड़क के मोड पर थी। वहीं चुंगी पर खूब चहल-पहल हो रही थी। पाँच-छह ट्रकें लाइन लगाये खड़े थे। पल्ली-पार ढाबे से फिल्मी गानों की आवाज़ भगौने में करछी की टनटनाहट से छन-छन कर आ रही थी। सभी एक-दूसरे से बातें करते जाते। धनपत की तबियत चकाचक हो गई।

आढ़त पर आज माल कम ही था। अभी चहल-पहल भी कम ही थी। बाएँ कोने में गेहूँ के छह बोरों का अड़म लगा हुआ था। तराज़ू के काँटे के पास खुली बोरियाँ रखी थीं। धनपत ने सफ़ाई कर बोरियाँ पलट दीं और ढेरियाँ सजा दीं। वह आज बहुत ही खुश था। पंजे के बल चक्कर काट रेडियो पर बजते अंग्रेजी गाने 'डिस्को दीवाने' को अपनी तरह से गाने लगा।

"डिस्को दीवाना है ···।" ताल ठोंक बदलू ने सुर मिलाया।

"नुकै डिस्को दीवाना है ···"

कुछ ही समय में दोनों का मन ऊबने लगा। 'कहाँ फँस गये,' धनपत सोच रहा था, वरना मज़े में गिल्ली चटका रहे होते। न कोई ग्राहक आया, न कोई अनाज़ डालने आया। दिन सामान से लदी बुग्गी की भांति धीमी गति से बढ़ रहा था।

तभी सफेद कपड़े पहने और मैली पगड़ी बाँधे एक ग्राहक आया। बीड़ी मसल कान में खोंसी और बोला, "तोलियो तीन धड़ी।"

"बस चाच्चा, तीन धड़ी।" धनपत पूरे उत्साह से तराज़ू पर अनाज़ भरने लगा। बदलू ने उछलकर दूसरी ओर पंद्रह किलो का बाट रखा। यह देख ग्राहक मुस्कराया।

"उरै शाबाश। यों कर, एक धड़ी और बढ़ा दे छज्जू के लौंडे के वास्ते।" जल्दी से धनपत ने एक धड़ी और तौल कर फैली चादर पर उँड़ेल दी।

"ना, ना, डेढ़ धड़ी कम करियो।"

धनपत और बदलू के हाथ मशीन की तरह चल रहे थे।

"लल्लू, चार बढ़ा दीजो।"

"ऐ लो।"

"म्हारा तो भेजा फिर गया स। मुन्ना, डेढ़ घटाइयो।"

"लो चाच्चा, तम खुस रहो।"

"बस दो होर तौल। घणा सयाणा छोरा स।"

"बस चाच्चा?" गेहूँ चादर पर उँड़ेल कर धनपत ने पूछा।

"हम्बै!" और जल्दी से गठरी बाँधने लगा।

"चाच्चा, म्हारी समझ में से तो बस ग्राहक खुस रहै।" धनपत एक मंजे हुये दुकानदार की तरह बातें करने लगा।

"शाबाश," ग्राहक ने धनपत की तारीफ़ की और अंटे से रुपये निकालकर बढ़ाते हुए बोला, "पूरे साठ और पाँच, साढ़े छह धड़ी के। गिन ले मुन्ना।"

"यो के चाच्चा, कदि तुम गलत दोगे।" पैसे जेब में रखते हुए धनपत बोला।

ग्राहक मुस्कराया। बीड़ी सुलगाते हुए उसने पूछा, "पहले न देखा आढ़त पे।"

"हम टिरेनिंग पे हैं। बापू गुड़-मंडी में संग ले जावेगो।" धनपत ने तुरंत उत्तर दिया।

"गुड़-मंडी में ··· हूँ?" ग्राहक कुछ सोचने लगा, "गुड़-मंडी की मन्नै भी इंतजार स।"

"चाच्चा, ज़रूर अइयो म्हारे ठेले पे।" दोनों ने एक साथ निमंत्रण दिया। गठरी सिर पर लाद ग्राहक बिना मुड़े चल दिया।

दिन की पहली बिक्री। अपनी नोटों से भरी जेब हथेली से ठोंक धनपत मन ही मन खुश हो रहा था कि मकान से चौधरी की बेटी सुनहरी धड़धड़ाती हुई आई।

"बैठ गया भट्ठा, बापू का।" वह ऊँचे स्वर में बोली।

"के कह रही स?" धनपत बिगड़ा।

"पूरे पाँच रुपये का घाटा।"

"नुके इल्जाम धर रई।" धनपत अकड़ा।

कमर पर हाथ धर सुनहरी ने अकड़ कर धनपत का सामना किया। "सब देख रई खिड़की से। तन्नक सा हिसाब न कर सके। सात-सात अनाज़ देके दाम लिये साढ़े छह के!" वह चिल्लाई।

"एवई लानत-मलानत कर रही।" धनपत का स्वर अस्थिर हुआ। सुनहरी ने ग्राहक की एक-एक बात दोहरा कर सारा हिसाब खोल कर रख दिया। धनपत उंगलियों पर जोड़ता रहा। रुपये निकाल कर गिने, वाकई आधी धड़ी के दाम कम थे।

"स्कूल में दिल लगे ना है, हिसाब किर्गे कू आवेगा।" सुनहरी बिगड़ रही थी।

बदलू और धनपत एक-दूसरे को मुँह बाये देखते रहे।

"आण दे बापू को ···" सुनहरी ने धमकाया।

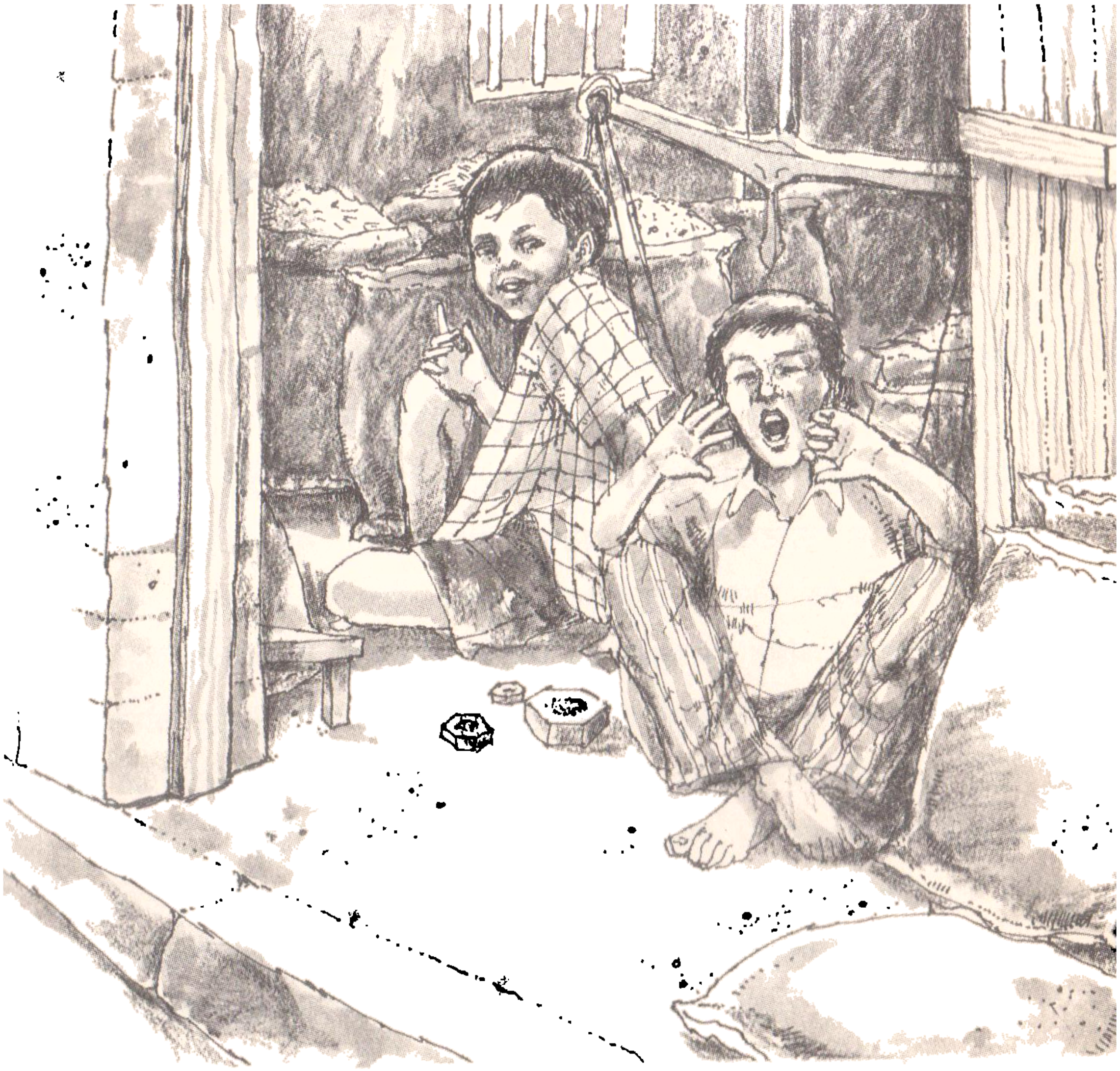
अब तो धनपत बेहद घबरा गया। 'आज फेल पाया गया तो गुड़-मंडी का मज़ा कैसे देखेगा?' वह सोचने लगा।

"न, न, लाडो, बापू से मत कहियो।" उसने सुनहरी को मनाया, "ले, झाड़ू मार ले म्हारे भेजे पे।"

"हवा में झाड़ू डोलाऊँ तो बावरी ना कही जाऊँ। थारा भेजा तो भैंसियन के चारे में मिल गया ···"

"लाली, मुनिया!" बदलू ने मनाया।

"थारी थोड्डी में हाथ गेरूँ," धनपत ने विनती की, "जो कहेगी मानूँगा, धरम से।" धनपत कान को हाथ लगाकर बोला।



"तो चढ़ जा पेड़ पर होर ला दे चार अमरूद, पक्के ··· एकदम फिट।" सुनहरी ने आदेश दिया।

चार अमरूद से जान तो बच गई, पर दिन की बात अन्दर ही अन्दर मन को काटती रही। 'मामूली-सा जोड़-घटाना नहीं कर सका और उसकी सहपाठिका ने दूर से ही गलती पकड़ ली। ऐसे तो गुड़-मंडी में बापू का धंधा ही बैठ जाएगा। नहीं, नहीं, अब ऐसा नहीं होगा।' धनपत ने निश्चय कर लिया।

दिन ढल चुका था। चूल्हा लीपकर ताई और अम्मा कोठरी की ओर बढ़ गईं। ताऊ भी हुक्का कोने में रख खपरैल के नीचे खाट

पर लेट गये। धनपत की आँखों में नींद नहीं थी। चुपचाप उठा, कापी-किताब उठाई और ठंड में सिकुड़ते हुये चौपले पर बत्ती के नीचे जा बैठा। जाटनी के छोरे ने फिर रोना शुरू कर दिया, साथ हुआ जाटनी का लगातार 'हुर्र ··· रै ··· रै ···' का आलाप। पर, आज धनपत पर असर नहीं हुआ। उसका सारा ध्यान सवाल हल करने में लगा हुआ था।

धीरे-धीरे धनपत को हिसाब में मज़ा आने लगा। ताऊ और बापू गुड़ तैयार करने तड़के ही निकल जाते और रात में देर से लौटते। पाठशाला से लौटकर अब धनपत गिल्ली-डंडा के बजाए ज़ुबानी हिसाब के खेल खेलता रहता।

आखिर गुड़-मंडी शुरू हुई। मंडी बड़ी सड़क के दोनों ओर लगती। आस-पास के सभी किसान अपनी ईख के अच्छे दाम वसूल करने के लिए गुड़ बना कर लाते। उन चार-पाँच दिनों के लिये सारा गाँव गुड़ के रंग में रँग जाता। सड़क के दोनों ओर गुड़ से लदी गाड़ियों की कतारें और गाड़ियों के बीच में तिरपाल पर सजे गुड़ की भेलियों के पहाड़ नज़र आते। कहीं-कहीं गुड़ से लदी गाड़ियों के पीछे झोपड़ियाँ और ढाबे छिप जाते। ऐसा लगता मानो सम्पूर्ण वातावरण में गुड़ ही गुड़ समा गया हो।

मुँह अंधेरे ही धनपत के बापू ने जगह घेर ली। गुड़ की ढेरियों को सूरज की नाज़ुक किरणों ने छू कर सोने जैसा निखार दिया। हवा में भी गुड़ की मिठास रस-बस गई थी। मंडी में उत्साह का वातावरण छाया था। रंग-बिरंगी रज़ाइयों में लिपटे किसान माल निपटाने की आस में थोक के व्यापारियों पर नज़र बाँधे हुये थे। धनपत एक खास ग्राहक की राह देख रहा था।

दिन बीत रहा था पर जिसका धनपत को इंतजार था, वह नहीं दिखा। उसे यकीन था कि वह ज़रूर आएगा। कहीं और घाटे का सौदा थोड़े ही पटेगा। दोपहर की खुमारी छा गई, बापू भैंसों को

चारा डाल वहीं खाट पर तन कर सो गए। ताऊ भी कँपकँपाते बुखारी सुर में, 'उरै तेरे भगवाण की माया का के कैणा स ···' गाते हुक्का ले सामने लकड़ी की टाल पर बतियाने चले गये। तिरपाल पर धनपत अकेला ऊँघने लगा कि तभी बदलू की किलकारी ने उसे चौंका दिया।

"हुरै थारे की, धन्पत्ती, वो चाच्चा आ रिया है। देख के, मन्ने भी चाच्चा, राम-राम कर दी।"

"शाबास! हो जा तैयार।" धनपत ने उचक कर अपनी नई कमीज़ की बाहें पलट लीं।

"नुके हौल-सी हो रई।" बदलू फुसफुसाया।

"चुप्पी बैठा रह, घबरावै मत नी।" धनपत ने ढाढ़स बँधाया और अगले पल मुँह ऊपर करके उस जाने-पहचाने विशिष्ट ग्राहक को पुकारा, "चाच्चा, राम-राम।"

"भई वाह, तम चौधरी की आढ़त पर बैठे ···" ग्राहक पहचानने की कोशिश कर रहा था।

"सही पिचाणा। चाच्चा, हम तो थारी राह देख रहे स।" धनपत ने गुड़ की सारी मिठास अपने शब्दों में घोल दी।

"जुग-जुग जीवे लल्लू!" कहकर वह वहीं तिरपाल पर उकड़ूँ बैठ गया। बीड़ी सुलगा कर मुँह से लगाई और बोरे का मुँह फैला कर बोला, "ला, दे पाँच भेली।"

दोनों लड़के काम में जुट गये।

"न, न, चार और सा ··· अच्छा एक कम ···"

'आ गया अपने रंग पे चाच्चा,' धनपत मन ही मन सोच रहा था।

"मुन्ना, तीन कम आठ और लाइयो ··· अच्छा दो कम कर दे ··· हाँ, तीन और धर ···"

"लो चाच्चा।" बदलू चमक कर बोला। उधर धनपत मन में हिसाब जोड़े जा रहा था।

"लल्लू, दो कम छह और दे बिरमपाल के लिये, ··· बस छह भेली अलग ··· बोरा फुल्ल हो गया।"

"बस चाच्चा?" बदलू ने पूछा।

"नाराज़ हो? गुड़-मंडी से बस इतना ही ···" धनपत ने मनाया।

ग्राहक हँसा और एक भेली निकालते हुए बोला, "अच्छा ये एक कम कर दे, चार बढ़ा दे, थारे कहने पर। घणा सयाणा बालक स!" उसने पुचकारा।

चुपचाप धनपत ने बोरे में चार भेलियाँ और रख दीं।

बोरा समेट ग्राहक खड़ा हुआ। जल्दबाज़ी का नाटक करते हुए तीन नोट सौ-सौ के बढ़ाए, "बीस और चार भेली के दो सौ और दस कम पचास ··· ला मुन्ना, खुल्ले लौटा दे।"

धनपत ने ग्राहक की ओर पैनी दृष्टि डाली। 'चूना लगा रिया स, सत्ताईस के चौबीस धड़ी और दो सौ सत्तर के दो सौ चालीस रुपये? हम के भोंदू दिक्खें।' धनपत मन ही मन बोला। ग्राहक से कुछ न बोल मुस्कराते हुये नोट मोड़ जेब में रख लिये।

"लो चाच्चा। अरे, खुले पैसे ···" जेब टटोलते हुये धनपत ने बदलू को आँख से इशारा किया। बदलू तैयार बैठा था।

"चाच्चा, तममें कुछ खुले नोट हैं?" बदलू ने सवाल किया।

बेमन से अंटे से रूमाल खोल ग्राहक ने तिरपाल पर बिछा दिया। दस और पाँच के नोट चमक रहे थे। सहज भाव से ग्राहक के सामने ही धनपत ने रूमाल में से पचास का नोट उठाया और जल्दी-जल्दी समझाने लगा।

"लो बन गया काम। लाओ, ये दस और पाँच के दो, बदलू ने पाँच तमको दिये, बीस म्यारे कू। ए लो पचास का नोट पूरम-पूर। इब बदलू के पाँच लौटाये। हो गया हिसाब। खुश।"

ग्राहक सकपकाया। "नुके यो के रिया ··· यो तो ···" वह हकलाया।

धनपत तन कर खड़ा हो गया और रौब से बोला, "जित्ता माल

लिया, उत्तै दाम और ये पाँच रुपये और उस दिन चौधरी के माल के। चाच्चा के समझे?"

पाँच का एक नोट और ग्राहक के हाथ से लेकर उसने पुराना हिसाब भी बराबर कर लिया।

"देखियो, होश . . ." ग्राहक हड़बड़ा कर गुस्सा जताने लगा।

"आँखिन न दिखाओ चाच्चा, वरना बोरा पलट ताऊ को माल दिखाऊँ?" बदलू ने धमकाया।

"चाच्चा, इज़्ज़त प्यारी है तो चुप्प देनी रपट लो। इब ठाड़-ठाड़े टेम फिज़ूल मत करो। मन्ने तमको पिचाणा, तम हमें जान लो।" धनपत हँसकर बोला।

घबराकर ग्राहक ने बोरा कँधे पर लादा तो बदलू ने पास जाकर धीरे से कहा, "भूल-चूक लेनी देनी माफ़।"

"हिसाब बेबाक!" फुदक कर धनपत ने बदलू के हाथ पर ताली दे मारी।

ग्राहक चला गया। धनपत और बदलू अपनी सफलता पर प्रसन्न हो रहे थे।



आद्या की जीत

नीलिमा झा

"करम त फूटल छैक, तखनो छम-छम नाचैत-फिरैत ऐछ।" बाबी झुँझलाती, तुलसी-चौर के इर्द-गिर्द अल्पना देने लगी। आद्या दुख और क्रोध से भर गई।

आद्या के शरीर पर एक भी गहना नहीं है। केवल हाथों में सोने की दो पतली चूड़ियाँ और तन पर मामूली साड़ी। उसने शीशे में देखा, 'माँ ने दोनों ओर के केशों को खूब चिपकाकर बीच में आकाश गंगा की तरह सीधी और उजली माँग निकाल दी है।' वह कुछ देर अपने चेहरे को देखती रही फिर मुँह फेर शीशा रख बाहर निकल आई।

उसे देखते ही बाबी, उसकी दादी ने टोका, "कतए विदा भेलैं?"

"बड़की काकी के यहाँ।" उसने ढेकी के पास चावल चुनती माँ की ओर देख कर कहा।

"करम त फूटल छैक, तखनो छम-छम नाचैत-फिरैत ऐछ।" बाबी झुँझलाती, तुलसी-चौर के इर्द-गिर्द अल्पना देने लगी।

आद्या दुख और क्रोध से भर गई। उसने तमक कर कुछ बोलना चाहा पर माँ की आँखों की घुड़की समझकर चुप हो गई।

"आब मुँह बैने की ठाड़ छैं? जो, गंगापुरवला समधी लै जाबक लेल आबिते हेता।" बाबी बड़बड़ाती रही, "एहि अभागी क की हएतै? पन्द्रहे बरस में विधवा भ गैल।" वह आँचल से आँखें पोछने लगी।

आद्या तेज कदमों से बाहर निकल गई। वह और कुछ सुनना नहीं चाहती थी।

"बाबी भी हद करती है। एक तो मुझे पढ़ने नहीं दिया। फिर हर वक्त एक ही बात का रोना।" वह बड़बड़ाती गाँव के टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर आगे चलने लगी और सोचने लगी, 'काश! मैं कुछ कर पाती और अपने पैरों पर किसी तरह खड़ी हो जाती तो ...'

"दीदी, डर नहीं लग रहा है?" ज़ोर से आवाज़ आई।

आद्या ने चौंक कर इधर-उधर देखा। तभी धप्प से बचनू आम के पेड़ से आद्या के ठीक सामने कूदा। वह डर के मारे पीछे हट गयी। बचनू बटन के अभाव में पटसन की डोरी से पैण्ट कसता हुआ हँसने लगा।

आद्या उसे पीटने को दौड़ी, "रुक, बताती हूँ तुझे।"

वह पैण्ट पकड़े भाग गया।

आद्या मुस्कराने लगी। पास ही तारा खटिये पर लेटी अपने दोनों घुटनें जोड़ पैरों की गद्दी में अपने भाई को बिठा झूला-झुनरी गा रही थी –

चन्दा मामा आवअ,
रस कुसियार लावअ,
फोका मखान लावअ,
कतरल पान लावअ,
बउआ के मुँह में घुटुक!

यह कह वह झूठ-मूठ अपने भाई को कौर खिला देती। आद्या उसे टोके बिना आगे बढ़ गई।

बड़की काकी के आँगन के बीच बड़ा-सा मंडप बना था और बहुत सारी पीली धोतियाँ सूख रही थीं। एक ओर पीठार और सिन्दूर से रंगी ओखली औंधी पड़ी थी। आद्या ने पायल की रुन-झुन आवाज़ सुनी। पीछे मुड़ कर देखना चाहा कि किसी ने उसकी आँखें बन्द कर दीं।

"सुलोचना, क्या कर रही हो?" आद्या ने आँखों से हाथ हटाते हुए कहा।

"तुम ने बहुत देर कर दी, सभी लोग तुम्हारा ही इन्तजार कर रहे हैं। अब जल्दी चलो।" सुलोचना ने अपनी छोटी गोल-गोल आँखें नचाकर कहा।

कमरे में अच्छा खासा जमघट था। आद्या ने देखा, सफ़ेद साड़ी-ब्लाउज़ पहने एक महिला को सब औरतें घेरे हुए बैठी थीं। आद्या ने सोचा, बड़की काकी की रिश्तेदार होंगी। वह कितनी शान्त और अच्छी लग रही थीं।

"आद्या तुम आ गई।" बेनीपट्टी वाली भौजी ने उसे देखते ही कहा, "लो, रंग की कटोरी और रुई। उस दीवार पर पालकी में बहू बनाना शुरू करो। मैं इस कोने में नवग्रह बनाती हूँ।"

फिर सफ़ेद साड़ी वाली माहिला को देखते हुए भौजी ने कहा, "दीदी! आप अगर कुछ बना देतीं तो कितना अच्छा होता।"

"नहीं, आज नहीं। मैं कभी और बना दूँगी।"

आद्या ने देखा कि दीवारों को गोबर से लीप कर पहले समतल बना दिया गया था। फिर उस पर चूने से पुताई कर दी गई थी।

"क्यों, और कोई नहीं है, जो इसे शुभ काम में हाथ लगाने को कह रही हो?" तरौनी वाली भौजी मुँह बिचकाकर बोली। आद्या अत्यन्त संकुचित हो उठी। मन हुआ भाग जाये।

तभी फूलपीली बुआ अपनी विराट काया लिये कमरे में आई। गोल-मटोल चेहरे पर बड़ी-बड़ी आँखें मटका कर वह कुछ कहने

ही वाली थी कि उसकी नज़र आद्या पर पड़ी। वह एक क्षण चेहरे को देखती रही फिर स्थिति को भाँपते हुए स्नेह से बोली, "खड़ी क्यों हो? कोहबर लिखना शुरू करो।"

आद्या हिचकिचाती वहीं खड़ी रही।

"अरे इसे कूची दो, शुरू करेगी।" फूलपीली बुआ ने कहा और फिर धीरे से आद्या को दीवार के पास ले जाकर बिठा दिया और खुद पास ही पैर पसार कर बैठ गई।

"त्रिपुरा कहाँ गई?" बेनीपट्टी वाली भौजी ने इधर-उधर देखते हुए पूछा, "उसे मैंने कूची के लिए कहा था।"

तभी त्रिपुरा आ गई, "लो भौजी, मैं चार कूची बना लाई।"

"एक आद्या को दो और तुम भी लेकर रंग भरो।"

"छोटकी काकी, आप चुप क्यों हैं? गाना शुरू कीजिये।" सुलोचना ने आद्या के पास आते हुये कहा।

छोटकी काकी पाल्थी मारकर बैठ गयी और गाने लगी। संग-संग सब औरतें गाने लगीं – "कोहबर लिखल . . ."

आद्या पूरे मनोयोग से चित्र बना रही थी। सफेद साड़ी वाली दीदी उसके काम को बड़े ध्यान से देख रही थीं। केले का पेड़ और बाँस की झाड़ी बन गई। अब रुई की बत्ती से डोली में बैठी लड़की की रूपरेखा बनने लगी कि सुलोचना ने उसे कोहनी मारी। रंग आद्या के ऊपर गिर गया। वह गुस्से से मुड़ी तो देखा, सुलोचना शैतानी से मुस्कराती उंगली से तरौनी वाली भौजी की ओर इशारा कर रही थी। वह आँखें बन्द किये, मुँह खोलकर सो रही थीं। उनका सिर एक तरफ झूल रहा था। आद्या ने अपनी हँसी रोकते हुए सुलोचना को पीटने के लिए हाथ उठाया। सहेलियों में हँसी का फव्वारा फूट पड़ा।

तरौनी वाली भौजी हड़बड़ाकर उठी।

"आपने तो बहुत गाना गाया।" त्रिपुरा ने ठिठोली की।



सभी सहेलियाँ फिर खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

तभी शकुन्तला दीदी जाने कहाँ से आ टपकीं, "देखो तो भला, सब की सब यहाँ जमघट लगाए बैठी हैं जैसे इन्हीं लोगों का कोहबर लिखा जा रहा हो।"

"धत्त्, दीदी!" काली शरमा कर बोली।

"देखो, आद्या ने कितने सुन्दर चित्र बनाये हैं। इसके हाथों में तो जादू है।" त्रिपुरा अपने झबरे केश की ओट से चित्रों को निहारती हुए बोली।

"तुम लोगों को गप्पबाजी से छुट्टी मिले, तब न तुम लोग भी कुछ सीखो।" फूलपीली बुआ बीच में ही कह उठी।

आद्या सोचने लगी, 'यहाँ तो यह लोग मेरी तारीफ़ करते हैं। क्या बाहर भी लोग मेरे चित्रों को पसन्द करेंगे? काश! मैं और अच्छी तरह सीख पाती।'

छोटे से कद की दुबली-पतली बड़की काकी हाथ में पान-सुपारी लिये पहुँची।

"अरे त्रिपुरा, तुमने यह क्या किया? वहाँ सुग्गापंखी का रंग भरना था। तुमने पीला क्यों डाल दिया?" आते ही बड़की काकी ने पूछा।

"अब क्या करूँ, भौजी?" दुखी होकर त्रिपुरा ने पूछा।

"उसे खुरच दो। हाँ, वर की टोपी गुलाबी रंग से बनाना।"

आद्या को हठात् बाबी की याद आयी। वह घबरा गई। चित्रकारी करते समय उसे समय का पता ही नहीं चला। जल्दी-जल्दी उसने रंगों को एक तरफ़ रखा और उठ गई।

"जा रही हो?" बड़की काकी ने पूछा।

"हाँ, पर अभी पूरा नहीं हुआ है। मैं कल फिर आ जाऊँगी।"

"हाँ बेटी, आ जाना। दसवें दिन ही तो तेरे गोपाल भइया का दुरागमन है।"

"अच्छा काकी।"

"सुनो त्रिपुरा, लाल रंग लड़की के घाघरे में भर देना।" आद्या ने हाथ से दिखा दिया।

"ठीक है।" उसने मुँह लटका कर कहा।

"रात को श्यामा-चकेबा खेलने आओगी ना?" सुलोचना ने पूछा।

"माँ से पूछूँगी।" कहते हुए आद्या कमरे से बाहर निकल गई।

वह तेज़ कदमों से घर लौटने लगी तभी उसे साइकिल की घण्टी की आवाज़ सुनाई दी। आद्या ने मुँह उठाया तो देखा उपेन्द्र भइया चले आ रहे हैं। पास आकर साइकिल से उतर गये और पूछा, "कैसी हो?"

"भइया, आप ···" आद्या ने जल्दी से पैर छूकर प्रणाम किया।

"हाँ, मैं मधुबनी चित्रकला की विख्यात कलाकार निरंजना देवी से मिल कर आ रहा हूँ।"

"क्या आपने उन्हें मेरे चित्र दिखाये थे?" आद्या ने पूछा।

"हाँ।" उपेन्द्र भइया ने जवाब दिया।

आद्या ने उत्सुक होकर पूछा, "उन्होंने चित्रों को देखकर क्या कहा ?"

कुरते की जेब में रखी डिब्बी से पान निकाल मुँह में डालते हुए भइया ने कहा, "तुम्हारे कागज़ पर बनाए गए चित्रों में, खासकर सूँड़ उठाये क्रुद्ध मुद्रा में गणेश जी का चित्र देखकर वह बहुत प्रसन्न हुईं।"

"सच भइया ?" आद्या ने खुशी और आश्चर्य से पूछा।

"वह तुम्हारी ही तरह किसी लड़की को अपने घर में रखकर सिखाना चाहती हैं, पर उसमें सीखने की चाह और मेहनत करने की लगन हो। इस बात पर वह बहुत ज़ोर दे रही थीं।" उपेन्द्र भइया ने कहा।

"सचमुच भइया, मैं सीखना चाहती हूँ।" कहकर वह एकदम से उदास हो गई।

"तुम बाबी और बाबा से इसके बारे में बात करना।" उपेन्द्र भइया ने कहा।

आद्या ने आँखें नीची कर लीं।

"थोड़ा ज़ोर लगाओ।" भइया बोले।

"मेरे ज़ोर लगाने से क्या होगा ?" आद्या दुखी होकर बोली।

"गंगापुर वालों की कुछ खबर आयी ?" उपेन्द्र भइया ने साइकिल पर चढ़ते हुये पूछा।

आद्या कुछ बोली नहीं।

"अच्छा, बाबा से मिलने आऊँगा।" कहते हुए वे चले गये।

वह घर पहुँची। दालान में बाबा सो रहे थे। आंगन में कदम रखते ही उसका दिल धक्-सा रह गया। बाबी बरामदे पर ही बैठी थी।

"पूरे संसार घूमि ऐलैं ?" बाबी ने कड़कती आवाज़ में पूछा।

वह बिना उत्तर दिये दनदनाती हुई कमरे में गई।

"माँ, तुम बाबी को कुछ कहती क्यों नहीं, क्यों इतना दबती हो?" उसने गुस्से से पूछा।

माँ धीरे से बोली, "वह थोड़ी-सी तीखी स्वभाव की हैं। तुम उनका बुरा मत माना करो।"

"माँ, बाबा से फिर से पढ़ाई के बारे में बात करूँ?" आद्या ने व्यग्रता से पूछा।

"बाबा क्या करेंगे? गंगापुर वालों को तुम्हारी पढ़ाई पसन्द नहीं है।" वह उठते हुए बोली।

"पर माँ, मैं कुछ करना चाहती हूँ।" आद्या ने रुँधे गले से कहा।

तभी बाबा के खाँसने की आवाज़ आई। माँ ने हड़बड़ा कर आँचल से सिर ढक लिया।

"आद्या बेटी, जरा पानी तो देना।"

"अभी लाती हूँ, बाबा," आद्या ने जवाब दिया और जल्दी से बाबा के लिए पानी लाने बाहर निकली।

बाबा बीच आँगन में खड़े थे। उनके गहरे बादामी रंग की चादर के अन्दर से सफ़ेद जनेऊ दिखाई पड़ रहा था।

आद्या चबूतरे पर रखी गगरी से लोटे में पानी डालकर ले आई। स्नेह के साथ उन्होंने पानी का लोटा लिया और पूछा, "मुँह क्यों लटका है? बाबी ने कुछ कहा?"

वह चुप रही।

"जाओ कुछ खा लो। मुँह सूख रहा है।" बाबा ने बात पलटते हुए कहा।

आद्या ने सिर हिलाया और रसोई घर की तरफ़ चली।

वह गिलास में पानी लेकर पीढ़ी पर बैठी ही थी कि माँ उसके लिए थाली में खाना ले आई।

मुँह में कौर डालती हुई आद्या बोली, "मैं आज शाम को श्यामा-चकेबा खेलने के लिए ...।"

"पहले खा लो या फिर बोल लो।" माँ ने टोका।

आद्या चुपचाप खाती रही।

शाम होने वाली थी। आद्या मिट्टी से श्यामा-चकेबा की मूर्तियाँ बना रही थी और धीरे-धीरे गुनगुना रही थी –

श्यामा खेलै गेलहूँ इन्दुशेखर भइया कर टोल।
चन्द्रहार हेराई गेल है, भइया, डलवा लय गेल चोर।
चोरवा के नाम गे बहिनी बताय देहूँ मोर।

तभी बाबा की गुस्से भरी आवाज़ सुनाई पड़ी, "क्या समझ रखा है इन लोगों ने?"

आद्या ने दरवाज़े से झाँका। देखा, बाबा का चेहरा तमतमाया हुआ है। घबरा कर बाहर निकल गई। उसने देखा, माँ खम्भे की ओट में खड़ी है।

"हमने सोचा था, गंगापुर वाले लड़की को ले जाने आये हैं।"

"की भेलै?" बाबी ने पूछा।

"कहते हैं विधवा बहू को घर ले जाकर क्या करेंगे।" कहते-कहते बाबा रुक गये। लगा, जैसे गला भर गया हो।

"हे भगवान! आब की हएतै।" बाबी ने माथा ठोका, "हमरा जेकर डर छलए, सेहे भेलैक।" वह दहाड़ मार कर रोने लगी।

आद्या आँखें नीची किए सब सुन रही थी।

आद्या को अब अपने आप को रोकना असम्भव हो गया। टप-टप-टप आँसू गिरने लगे।

"लय जाउ एकरा, अपन ससुरक पयर पकैड़ लेतै।" बाबी आगे बढ़ी और आद्या को कन्धे से पकड़ कर धकेलने लगी।

माँ विवश और असहाय खड़ी थी और बाबा जैसे कुछ सोचने की स्थिति में नहीं थे। आद्या डर कर माँ की ओर मुड़ी। वह एक क्षण सबको देखती रही, फिर दृढ़ स्वर में बोली "नहीं, मैं पैर नहीं पकड़ूँगी।"

सब भौंचक रह गये।

"अरे जो, अभागिन। जो, अपन ससुर के हाथ-पैर जोयड़ क बिनती कर।" बाबी गुस्से से काँपती हुई बोली।

"नहीं!" आद्या ने स्वाभिमान से सिर ऊँचा करके कहा।

बाबा चिन्तित और उदास चेहरा लिये उसे देख रहे थे। उन्होंने झिझकते हुये पूछा, "तो क्या करोगी बेटी?"

"हमर इज्जत मिट्टी में मिलायत। सब थू-थू करतैक।" बाबी मुँह फुला कर बोली।

"ये रोना-धोना क्यों हो रहा है आंगन में?"

सब चौंक गये। आद्या ने देखा, उपेन्द्र भइया और सफ़ेद साड़ी वाली दीदी आँगन में खड़े हैं।

"नैअ पूछह उपेन्द्र।" बाबी रुआँसी हो कर बोली और फिर सारा किस्सा रो-रो कर सुनाया।

उपेन्द्र भइया बोले, "आप लोग इसके भविष्य के बारे में क्यों इतनी चिन्ता करते हैं?" फिर बाबा की तरफ़ देखते हुये पूछा, "इसे दरभंगा जाकर मधुबनी चित्रकला सीखने दें।"

"आइ धरि, हमर गाँव स कोनो लड़की ···" बाबी ने मुँह चमकाकर कहा।

"तुम ज़रा चुप रहो!" बाबा ने डाँटा, फिर एक क्षण बाद कुछ सोचते हुए उपेन्द्र भइया से पूछा, "वहाँ जाकर क्या होगा? कौन सिखाएगा इसे?"

आद्या ने देखा, दीदी धीरे-धीरे मुस्करा रही थीं।

"मैं सिखाऊँगी।" उन्होंने कहा।

"आप?"

"हाँ। यह हैं निरंजना देवी, विख्यात कलाकार। इनसे सीखने का सौभाग्य कितनों को मिलता है?" उपेन्द्र भइया ने कहा।

"अरे, मैंने तो इन्हें पहचाना ही नहीं।" बाबा झेंपते हुए बोले।

आद्या आश्चर्यचकित दीदी को एक टक देखती रही।

"तुम्हारा क्या विचार है बहू?" बाबा ने ज़ोर से पूछा, "आद्या को सीखने के लिए भेज दूँ?"

माँ ने आद्या की ओर देखा और फिर धीरे से कहा, "जी।"

आद्या स्तब्ध खड़ी रही। वह सोच रही थी कि क्या यह माँ की ही आवाज़ है। उसे विश्वास नहीं हो रहा था। वह दौड़ कर माँ से लिपट गई, फिर जाकर निरंजना देवी को प्रणाम किया। वह खुद को रोक नहीं पाई, खुशी के मारे रोने लगी।

निरंजना देवी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "मुझे विश्वास है कि तुम कला के क्षेत्र में बहुत कुछ कर सकती हो।"

अपनी चादर को सम्भालते हुए बाबा बोले, "अभी जाकर कह आता हूँ कि वे सब वापस चले जाएँ। हमारी पोती को उनकी ज़रूरत नहीं है।" बाबा दालान की तरफ चले गए।

"आद्या! अब मुँह तो मीठा करवाओ।" उपेन्द्र भइया ने कहा।

"अभी मखान की खीर लाई भइया।"

रसोईघर की ओर जाते हुए आद्या ने सोचा कि वह बाबी को भी मना लेगी।

म्हारी सुन्दरी

गिरिजा रानी अस्थाना

"और कौन माँ, वही लाला दुलीचन्द और उसका छोरा चुन्नी लाल। बाप-बेटे की आँख लगी है, म्हारी सुन्दरी पे। कल से बुरी नज़र से बचाने के लिए उसे काला टीका लगा कर बाहर ले जाया करूँगा।" जयपाल हाथ-मुँह धोते हुए बोला।

"जब देखो तब दीदे फाड़-फाड़ कर देक्खे है म्हारी सुन्दरी को।" घर में घुसते हुए जयपाल बड़बड़ाया।

"कौन देक्खे है, दीदे फाड़-फाड़ कर तेरी सुन्दरी को?" दही बिलोती हुई जयपाल की माँ, सोनारी देवी बोली।

"और कौन माँ, वही लाला दुलीचन्द और उसका छोरा चुन्नी लाल। बाप-बेटे की आँख लगी है, म्हारी सुन्दरी पे। कल से बुरी नज़र से बचाने के लिए उसे काला टीका लगा कर बाहर ले जाया करूँगा।" जयपाल हाथ-मुँह धोते हुए बोला।

"ओ जयपाल के बापू, जरा इधर तो आ। इस बावले की बातें तो सुनो। कल से छोरा सुन्दरी को काला टीका लगा कर ले जाएगा।" जयपाल की माँ हँसते-हँसते बोली। मारे हँसी के वह दुहरी हुई जा रही थी।

"माँ, हँसती क्यों हो?" जयपाल नाराज़ होता हुआ बोला।

"अरे, हँसे ना तो क्या करे?" चौधरी हरी राम घर में घुसते हुए बोले। जयपाल के बापू चौधरी हरी राम लम्बे कद के व्यक्ति थे। वे धोती और कमीज़ पहने थे। उनके सिर पर हरे रंग की पगड़ी थी। वे पगड़ी उतारते हुए बोले, "अरे बावले, सुन्दरी को काला टीका? काली भैंस को काला टीका? तू तो दिवाणा हो रहा है सुन्दरी के पीछे।"

चौधरी हरी राम हाथ-मुँह धोकर खाना खाने बैठ गए। जयपाल की माँ पीतल के दो थालों में मक्की की रोटी, ताज़ा मक्खन, साग, प्याज़, हरी मिर्च और गुड़ रख कर ले आई। फिर काँसे के दो बड़े गिलासों में मटकी से लस्सी निकाली और ले आई। जयपाल अभी भी रूठा हुआ खड़ा था।

"अरे, तू अभी भी रूठा है। अच्छा बाबा, सेहर से तेरी सुन्दरी वास्ते काले रंग का गोटे वाला दामण और ओढ़नी मँगा दूँगी। अब तो माण जा।" जयपाल की माँ ने उसे छेड़ा।

"अरे, तुम सब ठिठोली ही करते रहोगे या छोरे को रोटी भी खान दोगे।" जयपाल की दादी अपने हाथ का हुक्का दीवार के सहारे खड़ा करती हुई बोली, "एक तो छोटा-सा बालक थारी भैंस लिये न जाने कहाँ-कहाँ डोलता फिरे है और जब भूखा-प्यासा घर आवे है तो थारी ठिठोली शुरू हो जावे है।" वह अपना दामण सम्हालती हुई उठी और जयपाल का हाथ पकड़ कर उसे अपने पास ले आई, "आ, मैं तुझे अपने हाथ से रोटी खिलाऊँ।" और दादी प्यार से रोटी खिलाने लगी।

"वैसे जे तो सच है, जयपाल के बापू, कि लाले की नीयत म्हारी सुन्दरी की तरफ़ ठीक ना है।" जयपाल की माँ रोटी सेंकते हुए बोली।

"अरे, सुन्दरी क्या कोई बर्तन-भाण्डा सै कि कोई उसे उठा ले जावेगा। अरे, म्हारी भैंस सारे गाम ते क्या सारे हरियाणा में सब भैंसण

से ज़्यादे दूध देवे सै। कोई उसके पास फटक कर तो देक्खे, वह झटकार कर रख देवेगी। तू चिन्ता मति कर।" चौधरी हरी राम थाली हटाते हुए बोले। उन्होंने उठकर हाथ-मुँह धोया। जयपाल की माँ ने हुक्का तैयार कर उनके हाथ में पकड़ा दिया। और, वह हुक्का लेकर बाहर चौबारे में चले गये।

अब तक जयपाल ने भी खाना खा लिया था। उसने अपना बस्ता उठाया और स्कूल के लिये चल दिया। जयपाल गाँव के सरकारी स्कूल में कक्षा सात में पढ़ता था। उसकी उम्र तेरह वर्ष की थी और वह भी अपने बापू की तरह लम्बा था। जयपाल पहले सुन्दरी के पास



गया। सुन्दरी नाद के पास बैठी जुगाली कर रही थी। उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए वह बोला, "स्कूल से लौट कर तुझे जोहड़ पर ले चलूँगा। तब तक कीचड़ में खूब लोट-पोट ले तू। ठीक है न?" सुन्दरी ने धीरे से गर्दन हिला दी।

"बड़ी समझदार है तू।" जयपाल हँसता हुआ बोला और स्कूल चला गया।

जयपाल चौधरी हरी राम का इकलौता बेटा था। उससे बड़ी उसकी तीन बहनें थीं। उन सबकी शादी हो चुकी थी, वे अपने ससुराल में थीं। उसके बापू बहुत ही सीधे किसान थे। थोड़ी-सी ज़मीन थी उनकी और यही एक भैंस थी, सुन्दरी। बस, उनका गुज़ारा ठीक-ठाक चल जाता था। जयपाल सुन्दरी पर जान छिड़कता था।

शाम के चार बजे जयपाल स्कूल से लौटा। उसने बस्ता घर में पटका और बाहर भागा।

"अरे, अब कहाँ जा रहा है तू? रोटी तो खाता जा।" उसकी माँ पीछे से चिल्लाई।

"माँ, बड़ी गर्मी है। मैं सुन्दरी को लेकर जोहड़ जा रया हूँ।" उसने उत्तर दिया। उसने सुन्दरी की रस्सी खोली और उसके ऊपर सवार होकर जोहड़ की तरफ़ चल दिया।

"ये छोरा तो सुन्दरी के पाछे बावला हो रयो सै। न खान की सुध सै, न नहान की सुध।" उसकी माँ बड़बड़ाई।

जोहड़ पर और भी लड़के थे। उनमें लाला दुलीचन्द का लड़का चुन्नी लाल भी था। दोनों बाप-बेटे कंजूसी और लालच के लिये सारे गाँव में बदनाम थे। किसी का अच्छा खेत हो, किसी के अच्छे जानवर हों, मतलब यह कि किसी के पास कोई अच्छी चीज़ हो तो उस पर उनकी नज़र लग जाती थी। और, जब तक वे उसे हासिल न कर लें तब तक चैन नहीं लेते थे। आजकल हरी राम की भैंस पर उनकी नज़र टिकी थी।

चुन्नी लाल ने जयपाल को सुन्दरी की पीठ पर बैठे हुए देखा तो वह ईर्ष्या से जल-भुन गया। बहुत दिनों से उसकी इच्छा थी कि सुन्दरी उसे मिल जाए तो वह भी ऐसे ही उस पर सवारी करे।

"हटो-हटो, बच्चो, शाही सवारी आ रही है।" जयपाल बोला।

लड़के हँसते हुए एक तरफ़ हट गये। लेकिन चुन्नी लाल मुँह बना कर बोला, "हुँह! बैठा तो भैंस पर है लेकिन इतरा ऐसे रहा है जैसे सचमुच शाही घोड़े पर सवार हो।"

"तो थारे पेट में दर्द क्यों कर हो रया सै? थारा दिल करे तो तू भी सवारी कर ले।" जयपाल ने जवाब दिया।

वह भैंस पर से उतर गया। भैंस जोहड़ के पानी में घुस गई। जयपाल उसे मल-मल कर नहलाने लगा और बोला, "जब देखो तब गोबर-कीचड़ में लोटती रहे सै तू, देख कितनी गंदी हो गई सै।"

"लो भाई सुनो। इसकी भैंस तो इन्द्र की परी है। वह गोबर-कीचड़ में नहीं लोटेगी, वह तो मखमल पर लोटेगी। क्यों?" चुन्नी लाल ने ताना दिया।

"देख चुन्नया, म्हारी सुन्दरी नाल कुछि मत कहियो वर्ना मुझ ते बुरा कोई न होगा। एक तो वैसे ही जब देक्खे तब दीदे फाड़-फाड़ कर, इस तरह से सुन्दरी को तुम लोग देक्खे हो कि निगल ही जाओगे। म्हने पता है थारी नीयत क्या सै।" जयपाल गुस्से में बोला।

उसका गुस्सा देख चुन्नी लाल चुपचाप वहाँ से खिसक गया। चुन्नी लाल छोटी कद-काठी का दुबला-पतला लड़का था और जयपाल के कन्धे तक भी नहीं पहुँचता था।

दूसरे दिन शाम को जब जयपाल स्कूल से लौटा तो लाला दुलीचन्द और बापू को बाहर बातें करते देख वहीं रुक गया। हरी राम चिन्तित थे और लाला उन्हें कुछ समझा रहा था।

"सो मेरी राय तो जेही है कि तुम सुन्दरी को कहीं और भेज दो। थोड़े दिनों में जब मामला ठंडा हो जावे तो फिर वापस बुला लेना,"

लाला बोला, "वर्ना पुलिस उसे ज़रूर पकड़ ले जावेगी।"

"के बात सै बापू? म्हारी सुन्दरी नू पुलिस क्योंकर पकड़ेगी भला?" जयपाल बीच में बोल पड़ा।

"थारी सुन्दरी ने सरकारी माल का नुकसान किया, इस कर के।" लाला ने उत्तर दिया।

"के मतलब? कैसे किया सै?" जयपाल ने अचरज से पूछा।

"सुन्दरी सरकारी नर्सरी के पेड़-पौधे खा गई।" चौधरी हरी राम ने धीरे से कहा।

"इत्ती सी बात पे पुलिस पकड़ के ले जाएगी सुन्दरी को? के बात करे सो बापू? पुलिस ने और कोई काम नहीं सै कि जो वे बिना बोलते जानवर को पकड़ने आवेगी।" जयपाल बोला।

दुलीचन्द नाक पर से चश्मा सरकाता हुआ बोला, "देख चौधरी, इसमें मेरा कोई स्वार्थ ना सै। तू ठहरा भोला-भाला, मैं न चाहूँ कि तू कोर्ट-कचहरी के चक्कर में पड़े। सोई मैं आ गया थारे पास। आगे थारी मर्ज़ी। अब तू चाहे इस छोरे की बात सुन या म्हारी।"

"बापू···" जयपाल ने कहना चाहा।

"तू चुप रह छोरे। तब से बक-बक किये जा रया सै। जा भीतर जा के रोटी खा।" हरी राम ने उसे झिड़क दिया।

दूसरे दिन सुबह जब जयपाल सोकर उठा तो उसे सुन्दरी के रम्भाने की आवाज़ नहीं सुनाई दी, वर्ना रोज़ तो वह सुन्दरी के रम्भाने से ही उठता था। वह आँखें मलता हुआ सुन्दरी की नाद पर गया। सुन्दरी वहाँ पर नहीं थी। नाद भी सूखी पड़ी थी।

"बापू, बापू, म्हारी सुन्दरी नू कोई चुरा कर ले गया···" चिल्लाता हुआ वह बापू के पास पहुँचा।

चौधरी हरी राम हुक्का एक तरफ़ रखते हुए बोले, "अरे चुप रह बावले। सुन्दरी नू कोई नहीं ले गया। मन्ने ही उसे थोड़े दिन के वास्ते कहीं भेज दिया सै।"

"सुन बापू, जो तन्ने सुन्दरी को लाला के धौरे भेजो सै तब तो तू सुन्दरी ते हाथ धो ले।" इतना कहता हुआ जयपाल बाहर निकल गया और सीधे लाला के घर पहुँचा। उसे सुन्दरी वहाँ भी नहीं दिखाई दी। वह चुपचाप वापस लौट आया।

स्कूल में जयपाल सारा दिन उदास रहा। शाम को छुट्टी होने पर चुपचाप घर की तरफ़ चल दिया। तभी रास्ते में उसका दोस्त चन्द्रभान मिला।

"के बात सै जयपाल, आज तू बड़ा चुप-चुप दिक्खे सै।" वह बोला।

"के बोलूँ। म्हारी सुन्दरी खो गई सै।"

"सुन्दरी खो गई? कैसे?"

"मन्ने पूरा विश्वास है कि ये काम लाला दुलीचन्द का है। उसी की नज़र थी सुन्दरी पे। वही म्हारी सुन्दरी को ले गया सै।" जयपाल बोला और सारी बातें चन्द्रभान को बताईं।

"पर पुलिस काहे को पकड़ेगी सुन्दरी को?" चन्द्रभान बोला।

"सेई तो मैं भी कहूँ।" जयपाल चलते-चलते बोला। दो-चार कदम चलने के बाद वह अचानक रुक गया और बोला, "चन्द्रभान, मैं थाने जा रया हूँ। पता करूँगा कि क्या पुलिस सच्ची में सुन्दरी को पकड़ लेवेगी।"

"तू थाने जायेगा? तुझे डर नहीं लगेगा?" चन्द्रभान ने पूछा।

"नहीं, मैं सुन्दरी के वास्ते कहीं भी जा सकता हूँ।" जयपाल ने उत्तर दिया।

जयपाल और चन्द्रभान थाने पहुँचे। थाने में मुंशी एक रजिस्टर में कुछ लिख रहा था। जयपाल और चन्द्रभान को देखकर ताज्जुब से बोला, "के बात सै? यहाँ क्यों आये हो तुमलोग?"

"थानेदार साब, म्हारी सुन्दरी निर्दोष सै। उसने कुछ नहीं किया सै। आप उसे जेल में मति डालो।"

मुंशी ने जयपाल की बात सुनकर अचरज से उसे देखते हुए पूछा, "सुन्दरी, कौन सुन्दरी? के किया सै उसने?"

"उसने कुछ नहीं किया है, थानेदार साब। मैं सच कह रया हूँ। और, जो उसने सरकारी पेड़-पौधे खाए भी हैं तो मैं नए पौधे लगा दूँगा पर आप म्हारी सुन्दरी नू मति पकड़ना।" जयपाल हाथ जोड़ता हुआ फिर बोला।

"के बके सै छोरे? सुन्दरी पेड़-पौधे कैसे खावेगी। अरे, कहीं छोरियाँ पेड़-पौधे खावे सैं।" थाने का मुंशी बोला।

"ना, ना, थानेदार साब। म्हारी सुन्दरी छोरी ना सै। वो तो म्हारी भैंस सै।" जयपाल ने समझाने की कोशिश की।

"हे भगवान! कैसे बावले से पाला पड़ा है। अरे छोरे, थारा दिमाग तो नहीं फिर गया? कहीं पुलिस भैंस को पकड़ती है!" मुंशी सिर पर हाथ मार कर बोला।

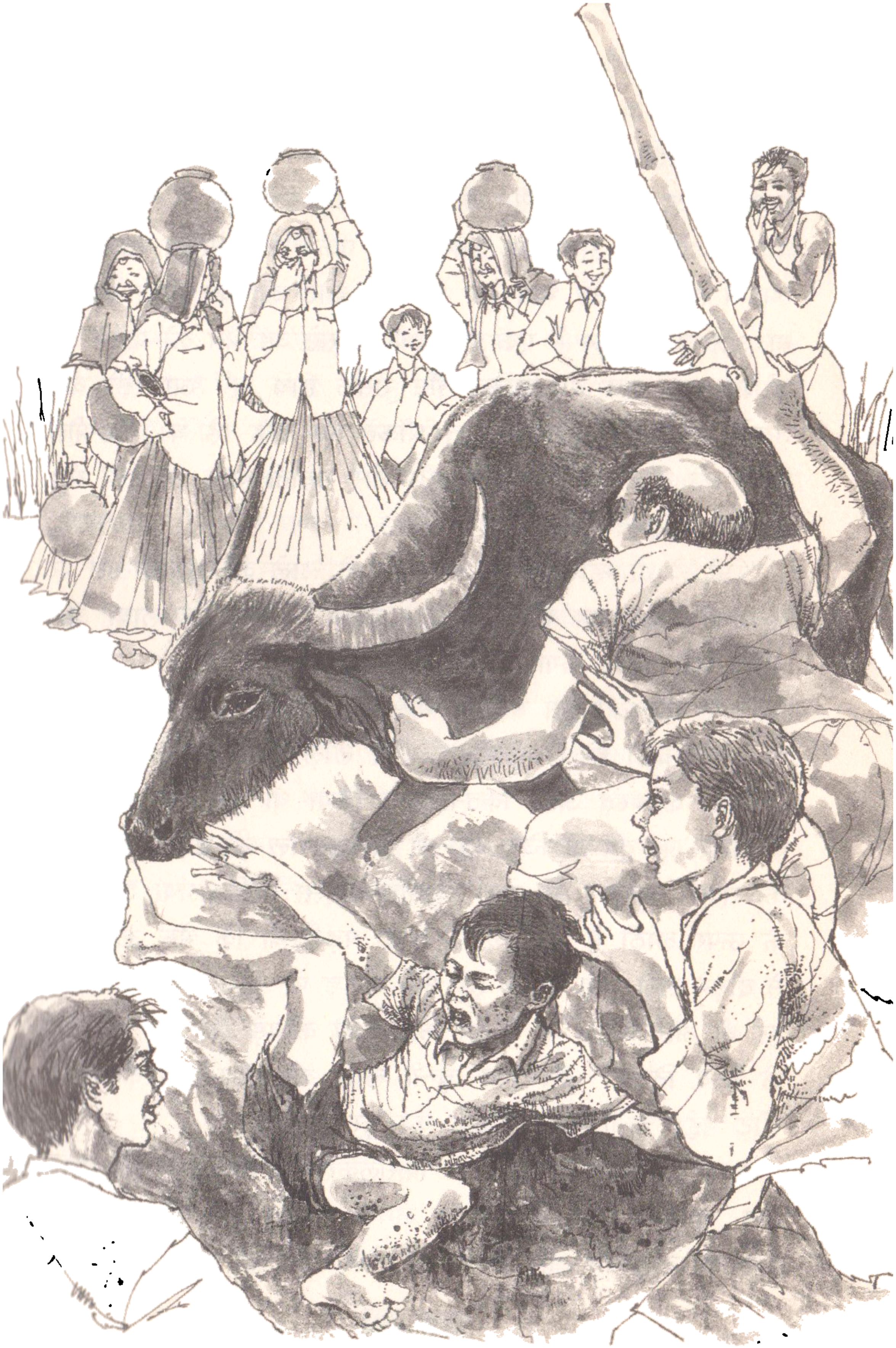
"तो इसके खिलाफ़ थाने में कोई रिपोर्ट दर्ज ना है?" जयपाल ने उत्सुकता से पूछा।

"भैंस के खिलाफ़ भी कहीं रिपोर्ट दर्ज होवे सै?" मुंशी ने जवाब दिया, "भाग यहाँ से। मुझे काम करने दे।"

"चल, इब लाला के धौरे जाकर अपणी सुन्दरी को ले आते हैं।" चन्द्रभान उतावला हो उठा।

"कोई फायदा नहीं है। लाला तो साफ़ नकार जाएगा कि सुन्दरी उसके धौरे है और फिर सुन्दरी को उसने अपने घर पर थोड़े ही रखा होगा। सुन्दरी को तो अब हमें ढूँढना होगा।" जयपाल धीरे से बोला।

दूसरे दिन छुट्टी थी। जयपाल और चन्द्रभान सारा दिन भैंस को ढूँढते रहे पर वो नहीं मिली। थक-हार कर दोनों गाँव के चबूतरे पर आकर बैठ गये जो गाँव की चौपाल भी थी। वहाँ पर गाँव के बड़े-बूढ़े पंचायत का फ़ैसला करते थे। तभी अचानक सुनाई दिया, "बापू! ओ बापू! मन्ने बचा ले, बापू ···!"



दोनों चौंक पड़े और उधर देखने लगे जिधर से शोर आ रहा था। उन्होंने देखा कि गाँव की तरफ़ से एक लम्बी भैंस तीर की तरह दौड़ी आ रही थी और उसकी पीठ पर एक ग्यारह-बारह साल का लड़का बैठा था। वह भैंस की पीठ को पूरे जी-जान से पकड़े हुए था और चिल्ला रहा था। उसके पीछे एक पैंतीस-चालीस साल का आदमी हाँफता हुआ भाग रहा था। वह छोटे कद का मोटा आदमी था और उसके हाथ में एक लाठी थी, जिससे वह भैंस को पीटने की कोशिश कर रहा था, लेकिन भैंस उसके हाथ नहीं आ रही थी। उसके अगल-बगल गाँव के कुत्ते भौंकते हुए दौड़ रहे थे। पीछे-पीछे बच्चों की टोली ताली बजाती और शोर मचाती चली आ रही थी। बड़ा ही अद्‌भुत दृश्य था!

"अरे, ये तो म्हारी सुन्दरी सै। और वो लाले का लड़का उस पर सवार सै। चल, हम भी उनके पीछे चलें।" जयपाल चिल्लाया और उनके पीछे भागने लगा। उसके पीछे चन्द्रभान भी भागा।

"ओ बापू, अरे इस मरखनी भैंसियन नू रोको किसी तरह से। ये तो म्हारी जान ही ले लेवेगी।" चुन्नी लाल रोता हुआ बोला।

"मर, कमबख्त अब। कितना मना किया था तुझे, मति बैठ भैंस के ऊपर, पर तुझे तो जिद्‌ चढ़ी थी कि जयपाल की तरह मैं भी भैंस की सवारी करूँगा। मर अब।" दुलीचन्द गुस्से से चिल्लाया और भैंस के ऊपर लाठी से वार किया। लाठी पड़नी थी कि भैंस और तेज़ी से दौड़ने लगी। वह दौड़ती हुई सीधे जोहड़ पर पहुँची। रात में बारिश हुई थी और जोहड़ के किनारे कीचड़ ही कीचड़ थी। भैंस एक पल के लिये ठिठकी और फिर चुन्नी लाल को लिए-लिए कीचड़ में लोट गई। चुन्नी लाल छिटक कर दूर जा गिरा।

लाला उसे उठाने लपका पर फिसलकर खुद कीचड़ में गिर गया। अब बाप-बेटे दोनों कीचड़ में लथपथ ज़मीन पर पड़े थे। तभी, जयपाल, चन्द्रभान और बच्चों की टोली भी वहाँ पहुँच गई। चुन्नी

लाल ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था, "अरी माँ, मैं मर गया। बापू, तू तो इस मरखनी भैंस नू जयपाल के धौरे ही वापस कर दे।"

"चुप रह। कितनी मुश्किल से चौधरी को बुद्धू बनाकर मैंने भैंस हथियाई थी। इब मैं इसे वापस थोड़े ही करता। सोचा था बेचकर पैसे खरे कर लूँगा। लेकिन तेरे कारणों सब गुड़-गोबर हो गया।" लाला ज़मीन से उठते हुए बोला।

"गुड़-गोबर नहीं, लाला कीचड़ कहो, कीचड़ हो गया। कैसी पटखनी दी है तुम दोनों को सुन्दरी ने। बढ़िया सबक दिया है उसने तुम दोनों को।" भैंस को थपथपाते हुए जयपाल बोला।

"तुझे ही मुबारक हो तेरी मरखनी भैंस।" चुन्नी लाल गुस्से में चिल्लाया, "चौबीस घण्टे में इसने हमारे चौबीस करम कर दिए।"

"म्हारी सुन्दरी मरखनी ना सै। जो उसे प्यार करता सै उसे वह भी प्यार करती सै, लेकिन लालची और धोखेबाज़ लोगों को नहीं छोड़ती।"

लाला कुछ नहीं बोला। उसने सहारा देकर चुन्नी लाल को उठाया और दोनों बाप-बेटे वहाँ से चुपचाप खिसक लिये।

"बड़ी गंदी हो गई सै न तू लाला धौरे रहकर! चल, नहा-धोकर फिर सुन्दरी बन जा।" जयपाल सुन्दरी को थपथपाते हुए बोला।

आज उसे किसी ने नहीं चिढ़ाया।

मनीआर्डर

दीपा अग्रवाल

"मनीआर्डर! ऐ गयो तेर मनीआर्डर, तार से। तुम्हें मुश्किल हैरी छी ···" वे बोले। गोविन्द की आँखों से आँसू छलक पड़े। डाक दाज्यू ने उसका कंधा थपथपाया, "अब तू बोझ-होझ नी सारणा। ठीक छू!"

सड़क से नीचे जाने वाली टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर गोविन्द उतर ही रहा था कि उसे थोड़ी दूर आगे डाकिया दिखाई पड़ा। उसका गोल, हँसमुख चेहरा उत्सुकता से खिल उठा। वह तेज़ी से आगे बढ़ा।

जाड़े की धूप ढलने लगी थी। लम्बे चीड़ के पेड़ दोपहर की तेज़, सर्द हवा में झूल रहे थे। पर चौदह वर्षीय गोविन्द को सिर्फ़ डाकिया ही दिखाई पड़ रहा था। अपना बस्ता संभालते हुए उसने पथरीले उतार पर छलाँग लगाई और ठीक डाकिये के पीछे पहुँच गया।

"डाक दाज्यू!" उसने पुकारा।

डाकिये ने घूम कर देखा।

"मनीआर्डर आ गयो?" गोविन्द ने आशा भरे स्वर में पूछा।

"ना, आज तो नहीं आया।" डाकिये ने धीरे से कहा। फिर कुछ सोच कर बोला, "तू फिकर मत कर। मैं डाकखाने में पता

लगाऊँगा। कहीं इधर-उधर तो नहीं है गयो तेर मनीआर्डर?"

गोविन्द का मुँह निराशा से सिकुड़-सा गया। उसने सिर्फ़ सिर हिलाया। गहरी सोच में डूबा वह गाँव की ओर बढ़ा।

आज भी मनीआर्डर नहीं आया ··· तीन महीने बीत चुके थे उसके पिता का मनीआर्डर आये। खर्चे की बड़ी तंगी हो गई थी। एक-एक दिन बड़ी कठिनाई से कट रहा था।

गोविन्द के पिता दिल्ली शहर में नौकरी करते थे। हर महीने बिना चूक उनका मनीआर्डर पहुँच जाता था। उन्हीं रुपयों से उनके परिवार का गुज़ारा होता था। लेकिन इस बार कई दिनों से गोविन्द की चिट्ठियों का जवाब भी नहीं आया था। क्या बात हो सकती थी?

खयालों में खोया गोविन्द गाँव पहुँच गया। लाल सिंह की दुकान सामने दिखी तो चौंक कर रुक गया। माँ ने कुछ सामान लाने को कहा था। लेकिन पैसे? पहले ही काफ़ी उधार चढ़ा था। और माँगते शर्म आती थी। पर घर में चूल्हा कैसे जलेगा?

लाल सिंह की दुकान में एक ओर चाय की केतली उबलती रहती थी, दूसरी तरफ़ परचून का सामान रखा था। चूड़ीदार पाजामा और ऊनी कोट पहने कुछ आदमी बेंच पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

चमचमाते पीतल के गिलास में चाय उँड़ेलते हुए बूढ़े लाल सिंह का हाथ रुक गया। "के छू, गोविन्द?" उसने पूछा।

"काका ··· तेल, खुशियाणी, गुड़ ···।" गोविन्द ने झिझकते हुए कहा।

"और पिछल उधार? पैसे छू?" लाल सिंह ने तुरंत सवाल किया।

"काका," गोविन्द ने कहा, "बोज्यू को मनीआर्डर नी आरो।"

"हूँ ···" लाल सिंह ने टोपी खिसका कर सिर खुजलाया। फिर धीरे से उठा और तेल तौलने लगा। इस स्थिति से वह अच्छी तरह परिचित था। आधे से ज़्यादा गाँव वालों का खर्चा मनीआर्डर से चलता था और हिसाब आगे-पीछे होता रहता था। ज़मीन की उपज

से पेट पालना असम्भव था। न ही किसी के पास इतनी ज़मीन थी, न सिंचाई के साधन। इसलिये गाँव के अधिकतर मर्द स्त्रियों पर घर व खेत, दोनों की ज़िम्मेदारी छोड़ कर, 'देश', यानी मैदानी इलाकों में नौकरी करने चले जाते और मनीआर्डर भेजते रहते।

सामान लेकर गोविन्द घर पहुँचा तो देखा, माँ पेड़ पर टँगे सूखी घास के पूले से गाय के लिये चारा उतार रही थी। दस वर्षीया बहन मधुली उसकी मदद कर रही थी। सफ़ेद पुती हुई दीवारें, स्लेटी पत्थर की छत, गेरू से रँगे हुए चौखट, यही था गोविन्द का घर। बगल में था गाय का गोठ। रसोईघर में सामान रखकर गोविन्द ने बाहर आंगन से कनस्तर उठाया और सोते से पानी भरने चला गया।

बाहर की कड़ी सर्दी के बाद रसोईघर के चूल्हे की गरमाहट बड़ी सुखदायी लग रही थी। भूख भी ज़ोरों से लगी थी।

"भली के खा, च्येल।" माँ ने गोविन्द को गरम-गरम लाई का साग और मड़वे की रोटी परोस दी।

साग अपने ही खेत का था – ताज़ा, स्वादिष्ट। पर यह सोच कर कि तेल उधार लेना पड़ा था, गोविन्द के गले में कौर अटक-सा रहा था। अचानक मधुली बोली, "दाज्यू, ऐ गयो मनीआर्डर?"

गोविन्द कुछ देर चुप रहा। फिर दबी ज़ुबान में बोला, "ना, भुली।"

मधुली का गोरा, सुर्ख गालों वाला चेहरा रुआँसा हो गया, "आज भी नी आयो। अब मेले में कैसे जाणा?"

गोविन्द को एकाएक झटका-सा लगा। उत्तरैणी का मेला भी तो आने वाला था। मकर संक्रान्ति के दिन बागेश्वर शहर में इस इलाके का बहुत बड़ा मेला लगता था। दूर-दूर से लोग आते। चारों ओर रंग-बिरंगें घाघरे-ओढ़नियाँ पहने, बड़ी-बड़ी नथ और नाक तक टीका लगाये औरतें दिखतीं। कहीं भोटिये चटकीले गलीचे बेचते दिखाई पड़ते, कहीं तिब्बती हींग-जम्बू, जड़ी-बूटियाँ और ऊनी कपड़ों की

दुकान लगाये बैठे रहते। बहुत दिनों से मधुली इस मेले का इन्तज़ार कर रही थी? लेकिन अब ···

मधुली कब की सो गई थी और गोविन्द लालटेन की धीमी रोशनी में अपना गृह-कार्य कर रहा था। पर, आज पढ़ाई में उसका मन नहीं लग रहा था।

माँ अन्दर आई तो उसने झिझकते हुए कहा, "ईजा, मैं शहर में कुछ काम-धाम ढूँढ लूँ?"

तुरंत माँ की भौंहें सिकुड़ गईं, "ना। कभै नैं। तेर बोज्यू तेर को पढ़ा-लिखा बड़ आदमी बनाणा चाह छै। तू पढ़ाई कर, च्येल।"

"पर मनीआर्डर ···"

"ए जाल मनीआर्डर।" माँ ने अपने स्वर में लापरवाही लाने की कोशिश की, पर गोविन्द सोचने लगा, 'क्या होगा, ···'

दूसरे दिन ही उसने निर्णय कर लिया, 'कुछ तो करेगा ही। इस तरह कब तक काम चलेगा?'

गोविन्द रोज़ शहर के स्कूल में पढ़ने जाता था। बाज़ार से गुज़रते हुए उसे एक बात सुनाई पड़ी – भारत और नेपाल के बीच तनाव की स्थिति के कारण बहुत से बोझा ढोने वाले नेपाली डोटियाल अपने देश वापस चले गये थे। यात्रियों को काफ़ी परेशानी हो रही थी। अचानक गोविन्द के मन में एक विचार कौंधा। वह तगड़ा, मज़बूत तो था ही। एक-आध बोझ रोज़ उठा लेगा, तो थोड़े बहुत पैसे मिल ही जाएँगे। पर, माँ से क्या कहेगा? वह तो कभी नहीं मानेगी। बड़ी जटिल समस्या थी। वह माँ से झूठ नहीं बोलना चाहता था। पर बिना रुपयों के गुज़ारा कैसे होगा? गोविन्द ने ठंडी साँस भरी और यह निश्चय किया कि माँ को तब तक नहीं बताएगा, जब तक बहुत सारे पैसे न कमा ले ···।

जैसे ही स्कूल खत्म हुआ, गोविन्द दौड़ कर सीधे बस स्टैण्ड पहुँच गया। थोड़ी देर बाद एक बस आई। सवारियाँ उतरने लगीं। उसने

देखा कि एक साहब के पास सिर्फ़ एक अटैची थी। वह उन्हीं की ओर लपका।

"सिर्फ़ पाँच रुपये मिलेंगे।" साहब बोले।

"ठीक है साब, ठीक है।" गोविन्द को तो जाने की जल्दी थी। पर जब अटैची उठाई तो पैर डगमगा से गये। अटैची काफ़ी भारी थी। किसी तरह अपने आप को संभाला और आगे बढ़ा। सौभाग्यवश, वह साहब बस स्टैण्ड से अधिक दूर नहीं रहते थे।

अपनी हथेली में पाँच का करारा नोट देख कर गोविन्द खुशी से चहक उठा। उसकी पहली कमाई! दुखते कंधों की पीड़ा भी जैसे अपने आप ही गायब हो गई।

घर देर से पहुँचा तो बहाना बनाया कि स्कूल में किसी उत्सव की तैयारी के लिये रुक गया था। इस बहाने के ज़ोर पर गोविन्द रोज़ स्कूल के बाद शहर में रुक जाता और सामान ढोता।

दिन बीतते गये, गोविन्द सामान उठाने का आदी-सा हो गया। किसी-किसी दिन दो चक्कर भी लगा लेता। लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते थक कर बुरा हाल हो जाता। कई बार गृह-कार्य करते-करते उसकी आँखें लग जातीं। टाँग और कंधे तो हमेशा दुखते ही रहते। पर गुल्लक भरते देखता तो वह सब कुछ भूल जाता।

एक दिन घर पहुँचते-पहुँचते बहुत देर हो गई। काफ़ी दूर के मोहल्ले में सामान पहुँचाने गया था।

आते ही माँ बोली, "कित्ते दिन रोकणगे मास्टर साब?"

"अब ईजा, उनर मर्ज़ी ठहरी।" गोविन्द ने जल्दी से माँ की बात टाली। पर उसका दिल धक्-सा रह गया था। अगर यह बहाना न चला तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

मौका पाकर वह पैसे गुल्लक में ठूँसने लगा। पूरे पंद्रह रुपये मिले थे आज। गोविन्द मन-ही-मन मुस्करा रहा था कि अचानक माँ की आवाज़ कानों में गूँजी।



"के डाल रा छू, गुल्लक मा?"

गोविन्द चौंका। गुल्लक हाथ से छूट कर जमीन पर गिर पड़ी और चूर-चूर हो गई। सारे सिक्के-नोट इधर-उधर बिखर गए।

माँ की आँखें फटी की फटी रह गईं। उसने कस कर गोविन्द का कंधा पकड़ लिया और चिल्लाई, "बोल, कहाँ से लाया तू इत्ते सारे नोट? बोल?"

गोविन्द चुप रहा। कैसे बताये कि शहर में कुली का काम किया है – चाहे सबके भले के लिये।

"कहाँ से लाय छै, रुपये? बोल! तूने चोरी की छै?" ईज़ा की आँखें आशंका से भरी थीं।

चोरी! ईजा उसे चोर समझ रही थी। गोविन्द का गला रुँध गया। उसके दिल में कितनी गहरी चोट लगी, वह स्वयं ही जानता था।

पर माँ का चेहरा गुस्से से तमतमा रहा था, "भूखो मर जाल तो भल हुणी। तूने चोरी कैस की?"

'गोविन्द, ओ गोविन्द।' – इतने में एक पहचानी हुई आवाज़ सुनाई पड़ी।

गोविन्द तुरन्त बाहर दौड़ा। डाक दाज्यू थे। वह हाँफते-हाँफते बोला, "डाक दाज्यू!"

"मनीआर्डर! ऐ गयो तेर मनीआर्डर, तार से। तुम्हें मुश्किल हैरी छी, इसलिये राती को ले आया।" वे बोले।

गोविन्द की आँखों से आँसू छलक पड़े। डाक दाज्यू ने उसका कंधा थपथपाया, "अब तू बोझ-होझ नी सारणा। ठीक छू!"

"की कुनी? बोझ सारणा!" माँ ने चीखकर पूछा।

डाकिये ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा, "दीदी, तेर को पतै नै? मैन शहर में देखा छै इसे, सामान उठाते। बड़ा भल छू तेर च्येल। पढ़-लिख होकर भी बोझ सारणा छू, घर में मुश्किल देख कर।"

माँ को तो मानो काठ मार गया हो। पश्चात्ताप के आँसू बह निकले। गोविन्द को गले से लगा लिया और रुँधे गले से बोली, "बड़ भारी गलती है गयी, च्येल।"

"गलती तो मेरी छी, ईजा। मैन तुझे बताया ही नहीं।" गोविन्द धीरे से बोला।

मनीआर्डर में लिखा था कि पिताजी दुर्घटनाग्रस्त हो गये थे। कई दिन अस्पताल में पड़े रहे। इसलिये मनीआर्डर नहीं भेज पाये, लेकिन अब ठीक हो गये थे और घर आ रहे थे – अगले हफ़्ते।

"अब हम सब मेले में जाल।" मधुली नाच कर बोली। और उधर गोविन्द की आँखों में खुशी ही खुशी चमक रही थी।

सिरपुर के खंडहर

विभा रानी देवसरे

"इसने रुपया-गहना नहीं चुराया क्या? एक टुटही मूर्ति ही चुराई है!" वह आदमी हँस पड़ता है, "बेटा, यह मूर्ति रुपये-गहनों से बहुत ज़्यादा कीमती है। बहुत पुरानी है।"

महानदी के तट पर बसा सिरपुर गाँव संध्या के झुटपुटे में एक गहरी चादर ओढ़ने लगा है। लहरों की कलकल ध्वनि और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को झकझोरती हवा आपस में मिलकर वातावरण को संगीतमय बना रही है। अभी कुछ ही क्षणों में एक घना अंधेरा सिरपुर गाँव को निगल जायेगा। और तब, छोटे-छोटे घरों की टिमटिमाती बत्तियाँ अंधेरे में जुगनू की रोशनी जैसी मालूम पड़ेंगी।

लेकिन गनेसी अभी भी नदी किनारे सिरपुर के पुराने खंडहरों में भटक रहा है। घंटों-घंटों वह इन खंडहरों में कुछ खोजता रहता है। शायद वह इन खण्डित मूर्तियों, प्राचीन गिरी हुई दीवारों को देख सिरपुर गाँव की खोई हुई समृद्धि और सम्पन्नता की कल्पना करता है। कई बार गनेसी ने चाहा कि इन ऐतिहासिक खंडहरों के बारे में चौकीदार रामआसरे से कुछ-कुछ पूछे लेकिन वह तो उसे देखते ही भड़क उठता है और डाँट कर भगा देता है। संध्या के समय



जब रामआसरे नहीं रहता है तभी गनेसी जी भर कर खंडहरों को निहारता है।

आज गनेसी को कुछ अधिक देर हो गई है। शांत पगडंडी पर अकेले चलते हुए वह सोच रहा है कि अवश्य उसके पिता उसे पीटेंगे और माँ भी भला-बुरा कहेगी। डराएगी, धमकाएगी। वह उनको चिन्तित नहीं करना चाहता लेकिन इन खंडहरों में कुछ ऐसा है जो उसे खींच ले जाता है। उसके मन में एक प्रबल जिज्ञासा है इनके बारे में कुछ जानने की, और वह अपने आप को रोक नहीं

पाता। विचारों में खोया गनेसी चला जा रहा है। तभी उसे अपना मित्र प्रागी दिखाई पड़ता है।

"अरे प्रागी, ई संझनिया बेला कहाँ जायस?" गनेसी पूछता है।

प्रागी भी हाँफते हुए कहता है, "मैं घर जात रहेबौ, ठड़का ओकर कुटिया दिखिस। मैं समझेव कि ज़रूर ओ कुटिया में कौनों जादूगर हो ही।"

प्रागी की बात सुनकर गनेसी को हँसी आती है, "ज़्यादा लाबारी झन मार।" प्रागी की गप्प मारने की आदत से वह अच्छी तरह परिचित है।

खंडहरों में भी तो उसे तरह-तरह की चीज़ें दिखाई पड़ती हैं। बगीचे में गाना गाती राजकुमारी, सफ़ेद घोड़े पर सवार राजकुमार। लेकिन, गनेसी जानता है कि भले ही प्रागी की बातें मनगढ़ंत हों, कभी न कभी सिरपुर के इन खंडहरों में कोई वैभवशाली राज्य रहा होगा, जिसका राजा बहुत वीर, रानी बहुत सुन्दर रही होगी। राज्य में हाथी, घोड़े, तालाब और बावड़ी, बगीचे, मन्दिर और शिवालय सभी रहे होंगे।

लेकिन रामआसरे उसे कभी कुछ नहीं बताता, बस डाँट कर भगा देता है। गनेसी को समझ में नहीं आता कि आखिर चौकीदार उसके संग ऐसा व्यवहार क्यों करता है।

खंडहरों के पास एक छोटा-सा मन्दिर है जहाँ एक पंडित जी रहते हैं। उन्होंने गनेसी को अक्षर-ज्ञान करवाया है और पंडित जी के कहने पर ही गनेसी के पिता ने उसे स्कूल भेजना आरम्भ किया है।

जब से गनेसी ने स्कूल जाना प्रारम्भ किया है, उसे इस बात का पूरा विश्वास हो गया है कि वह किसी तरह सिरपुर के खंडहरों का इतिहास जानकर ही रहेगा। एक बार बहुत हिम्मत जुटाकर जब उसने रामआसरे चौकीदार से कहा था कि खंडहरों से लोग पत्थर

उखाड़ कर ले जाते हैं और वह उन्हें रोकता क्यों नहीं है, तो रामआसरे ने खिल्ली उड़ाकर उसे भगा दिया था।

सिर्फ़ प्रागी उसके लगाव को समझता है। बाकी दोस्त भी उसकी हँसी उड़ाते हैं। वही अच्छी तरह से समझता है कि उसे इन टूटे खंडहरों से प्यार है क्योंकि, इन ढहती दीवारों और टूटी मूर्तियों से गनेसी को सिरपुर का वैभवशाली अतीत जुड़ा हुआ लगता है।

आज गनेसी बहुत घबराया हुआ है। बात ही ऐसी है। भरी दुपहरिया में भागा-भागा प्रागी के घर की ओर जा रहा है। पिताजी ने बड़ा भारी झटका पहुँचाया है उसे। कह रहे हैं कि गाँव छोड़कर शहर जाना है, वहाँ खूब कमाई हो जाती है। इस साल फसल अच्छी न होने से वह अपना पिछला कर्ज़ा नहीं उतार सके हैं। इसीलिये उनका और गनेसी दोनों का शहर जाना बहुत ज़रूरी है।

और गनेसी अब गाँव, खंडहर, माँ और छोटी बहन को छोड़कर यहाँ से सैंतीस मील दूर रामपुर शहर जा रहा है। बस में बैठे-बैठे उसे अपनी छोटी बहन की याद आ रही है। याद आता है, कैसे 'अटकन मटकन ...' गीत गा-गाकर खिलाया करता था।

शहर पहुँच बाप-बेटे दोनों मज़दूरी करने लगते हैं। कितनी बड़ी-बड़ी इमारतें हैं शहर में। कितने लोग, मोटर गाड़ियाँ, कितनी बड़ी-बड़ी दुकानें। लेकिन सिरपुर की याद गनेसी को हमेशा सताती है। उसका मन खंडहरों के बीच घूमने के लिये तड़प उठता है। दिन बीतते जा रहे हैं। गनेसी पिता के साथ मेहनत से काम करता है। पिता-पुत्र रूखी-सूखी खाकर रुपए जमा कर रहे हैं।

एक दिन एक घटना हो जाती है। गनेसी और उसके पिता काम पर जा रहे हैं। तभी वे देखते हैं कि एक आदमी बेतहाशा भागा जा रहा है। पीछे से, 'चोर, चोर! पकड़ो, पकड़ो!' की आवाज़ आती है। तीन-चार आदमी तेज़ी से उसका पीछा कर रहे हैं। गनेसी भी दौड़ पड़ता है। आगे बढ़ कर वह चोर को कस कर पकड़

लेता है। चोर बहुत छटपटाता है, गनेसी को दाँत भी काटता है लेकिन गनेसी उसे नहीं छोड़ता। इतने में बाकी लोग भी आ पहुँचते हैं।

"यही है," हाँफते हुए एक ठिगना-सा आदमी कहता है, "इसी ने मूर्ति चुराई है।"

चोर के पास एक छोटी-सी खण्डित मूर्ति मिलती है। गनेसी हैरान होकर उसे देखता है।

"यह क्या, भैया?" वह एक आदमी से पूछता है, "इसने रुपया-गहना नहीं चुराया क्या? एक टुटही मूर्ति ही चुराई है!"

वह आदमी हँस पड़ता है, "बेटा, यह मूर्ति रुपये-गहनों से बहुत ज़्यादा कीमती है। बहुत पुरानी है।"

"अच्छा?" गनेसी की आँखें आश्चर्य से फैल जाती हैं, "क्या सभी पुरानी-टुटही मूर्तियाँ कीमती होती हैं?"

"हाँ।"

सिरपुर के खंडहर और वह खाली स्थान जहाँ मूर्तियाँ थीं, गनेसी को याद आते हैं। वे मूर्तियाँ भी क्या इतनी ही कीमती थीं, वह सोचता है।

इस घटना के बाद पिताजी गाँव लौटने में एक दिन की भी देरी नहीं करते हैं। अगले रोज़ ही वे गनेसी को साथ लेकर गाँव लौट जाते हैं।

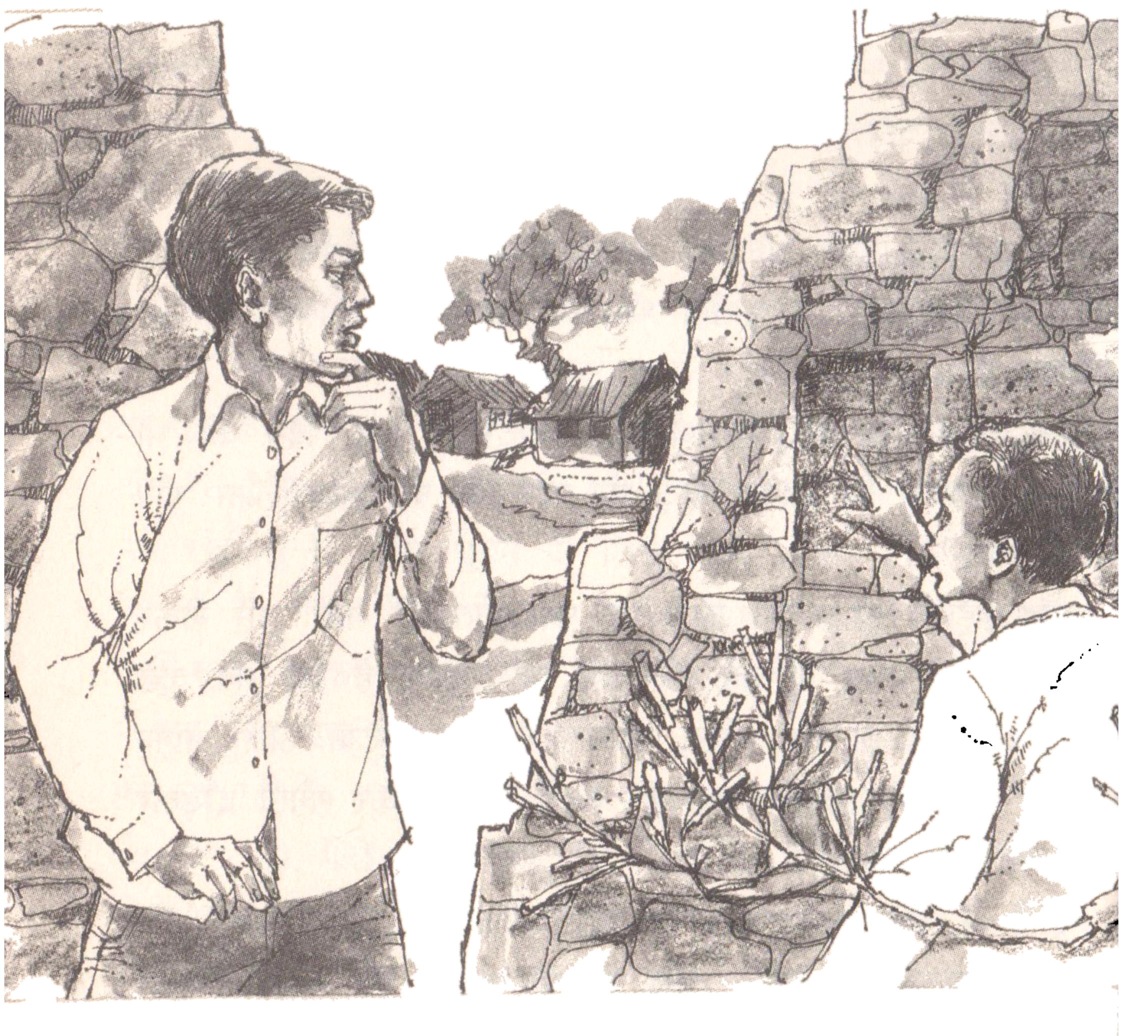
गाँव पहुँचते ही गनेसी प्रागी के घर जाता है और उसे लेकर पंडित जी के पास पहुँचता है। वहाँ वह देखता है कि सब कुछ वैसा का वैसा ही है। मंदिर, पंडित जी की कुटिया और आंगन में बँधी गाय और उसका बछड़ा। बछड़े को देखकर गनेसी दौड़कर उसे सहलाने लगता है।

इतने में पंडित जी आते हैं और पूछते हैं, "कब आये?"

गनेसी उनके पैर छूकर सारा किस्सा बताता है। सुनकर पंडित

जी बड़े ख़ुश होते हैं और अपने भतीजे नरेश चन्द्र शास्त्री से मिलवाते हैं। वे यहाँ सिरपुर के इन खंडहरों की खोज के सिलसिले में ही आए हैं, यह सुनकर गनेसी उछल पड़ता है। सोचता है, 'अब मुझे खंडहरों के इतिहास के बारे में जानकारी मिल जायेगी।'

दूसरे दिन ही नरेश भइया के साथ गनेसी खंडहरों में जाता है। उसकी उत्सुकता देखकर वह भी प्रभावित होते हैं। उसे बताते हैं कि किसी जमाने में सिरपुर गाँव 'श्रीपुर' कहलाता था। सातवीं सदी में यहाँ सोमवंशी राजाओं की राजधानी स्थापित हुई। ये खंडहर इस बात के गवाह हैं कि कभी यहाँ वैभवशाली नगर था। यहाँ बारह सौ वर्ष पहले की नालियाँ तथा दो बौद्ध मठ भी मिले हैं – एक



मठ में एक शिलालेख भी मिला है जिससे पता चलता है कि यह नगर कितना पुराना है। बौद्ध धर्म का यहाँ काफ़ी प्रचार था।

इन सब बातों को सुनकर गनेसी को बड़ा आश्चर्य होता है। वह एक-एक चीज़ के बारे में नरेश भइया से पूछता रहता है।

अचानक वह ठिठक कर खड़ा हो जाता है। बोलता है, "अरे! भइया जी, इहाँ तो एक मूर्ति रहिस!"

नरेश भइया रुक कर खाली स्थान को घूरने लगते हैं जिसकी ओर गनेसी इशारा कर रहा होता है।

गनेसी बताता है कि वहाँ पहले कुछ मूर्तियाँ थीं। वह उन्हें बताता है कि कैसे उसने शहर में मूर्ति चोर को पकड़ा था।

तभी अचानक रामआसरे चौकीदार आता है। गनेसी को देखकर उसकी भौंहें फड़कती हैं लेकिन नरेश चन्द्र शास्त्री को देखकर कहता है, "भइया, इसे लेकर यहाँ मत आया कीजिए।"

"लेकिन तुम्हें क्या नुकसान है?" नरेश भइया पूछते हैं।

रामआसरे चुप रहता है। फिर कहता है, "मैं तो यूँही कह रहा था। बच्चा है, कहीं सुनसान खंडहरों में भूत-प्रेत से डर न जाए।" और खिसियानी हँसी हँसता चला जाता है।

नरेश भइया पूछते हैं, "गनेसी, तुम्हें अच्छी तरह याद है कि इन-इन स्थानों पर मूर्तियाँ थीं?"

गनेसी सिर हिला कर 'हाँ' में उत्तर देता है।

"पुलिस को बताना पड़ेगा।" नरेश भइया कहते हैं।

नरेश चन्द्र गनेसी को अपने साथ पुलिस स्टेशन ले जाते हैं। वहाँ वह बेझिझक सारी बातें बताता है — कैसे वह खंडहरों की एक-एक ईंट से परिचित है। कैसे रामआसरे उसे वहाँ से हमेशा भगाता है। और, कैसे उसे कई मूर्तियाँ वहाँ से लापता दिखी हैं।

गनेसी सोचता है, 'दुख है कि उसके गाँव की ऐतिहासिक धरोहर [illegible] जा रही है। काश! उसके गाँव वालों को इस बात का ज्ञान

होता। लेकिन किसी ने उसका साथ नहीं दिया।'

उससे रहा नहीं जाता है। जैसे ही मौका लगता है वह पंडित जी के घर की ओर निकल जाता है।

नरेश भइया रास्ते में ही मिल जाते हैं। कहते हैं, "गनेसी, मूर्तियाँ मिल गईं।"

गनेसी खुश होता है, "सच भइया?"

"हाँ। सब तो नहीं, परन्तु कई एक मिल गईं। और पूछो, कहाँ। उसी बदमाश रामआसरे के घर। वही मूर्तियाँ चुरा-चुरा कर विदेशियों के हाथ बेचता रहा था।"

गनेसी चैन की साँस लेता है, 'अब सिरपुर की ऐतिहासिक धरोहर सुरक्षित रहेगी।'

नरेश भइया बताते हैं, "और हाँ, गनेसी! सरकार ने इनाम के तौर पर तुम्हारी पढ़ाई का खर्चा उठाने का आश्वासन दिया है।"

फ़ैसला

अनिल एकबोटे

"सकून क्यों नहीं, अम्मीजान?" शमीम ने पूछा।
"तुम्हारे भाईजान का ही हाल देखो। शाकिर बोल रहा था,
परसों नौकरी में तरक्की मिली तो उसके मुँह से यह
खुशखबरी सुनने कोई उसके पास नहीं था। . . ."

"मैं खुद तुम्हारी अम्मी को बोलता हूँ। तुम ये पैन रख लो। सच्ची, वे कुछ नहीं बोलतीं।" ज़िद करते हुए शमीम ने कहा। उसके बड़े भाई फ़हीम ने अपने दोस्त शाकिर के हाथ सउदी अरब से संदूक भर कर सामान भेजा था। स्कूल जाते वक्त ही संदूक घर पहुँचा था, इसलिए शमीम उसमें रखी चीज़ों को पूरी तरह से देख नहीं सका था। लेकिन खास उसके लिये भेजे गये पाँच-छह पैन उसे संदूक में ऊपर ही रखे मिल गये। उन्हीं में से एक पैन वह अपने जिगरी दोस्त परवेज़ के लिये लाया था। लेकिन परवेज़ था कि बगैर अपनी अम्मी को बताये पैन लेने को तैयार ही नहीं था।

मदरसे से छूटते ही शमीम परवेज़ के साथ उसके घर गया।

"अम्मी, सौदी से मेरे वास्ते भाईजान ने पाँच-छह पैन भेजे हैं। परवेज़ कू मैं एक दे रहा हूँ उन्हें वह लेता ही नहीं। आप इच कू बोलिये ना!" शमीम ने परवेज़ की शिकायत उसकी अम्मी से की।

"ले लो बेटे। जब तोहफ़ा छोटा है और प्यार से दे रहा है तो उसकू लेने में क्यों शरमा रहे? इससे अपनों का दिल दुखता है।"

अम्मी के इजाज़त देते ही परवेज़ ने खुशी से पैन ले लिया।

"और अम्मी, भाईजान संदूक भरके चीज़ाँ भेजे। मेरे वास्ते शायद कैमरा और स्टिरिओ भी भेजे होंगे। सौदी में उसकू अच्छी तनख्वाह मिल रही।" शमीम ने फ़ख्र के साथ कहा।

"अम्मी, बड़े होके मैं भी बाहर जाऊँगा और खूब कमाऊँगा।" परवेज़ ने ललचाकर कहा।

"मेरे कू तो भाईजान अभी से बुला रहे हैं। दसवीं पास करते ही शायद चला जाऊँगा।" शमीम ने अपने बारे में बतलाया।

पलभर खामोश रहकर परवेज़ की अम्मी ने कहा, "बाहर जाके खूब कमाना कोई बुरा है क्या? मगर कमाने से भी ज़्यादा बड़े और नेक बनने की कोशिश भी तो करना पड़ता। इससे अपने वतन का नाम ऊँचा होता।"

बड़े बनने की बात सुन शमीम कुछ कहने ही वाला था कि परवेज़ बोल पड़ा, "शमीम, जल्दी घर जाके, बस्ता रखके ग्राउंड पे आ जाओ। प्रैक्टिस कू जाना है ना?"

"आज प्रैक्टिस कू डुम्मा! आज तो भाईजान के सौदी वाले दोस्ताँ आने हैं। और, संदूक में है सो सब चीज़ाँ भी तो देखना है।" शमीम ने कहा।

"तो क्या आज हम लोगाँ अपने कप्तान के बगैर ही फुटबॉल खेलेंगे?" परवेज़ ने नाराज़गी से पूछा।

"परवेज़, जब तुम्हारा ये कप्तान सौदी चले गया तब क्या करोगे?" परवेज़ की अम्मी ने चिढ़ाते हुए पूछा। सुनकर शमीम के दिल में एकाएक हलचल पैदा हुई।

वह स्कूल के फुटबॉल टीम का कप्तान था। और उसके कोच, मजीद साब का कहना था कि अगर वह अच्छी तरह से रोज़ प्रैक्टिस



करे तो आसानी से स्टेट या नैशनल टीम के लिये चुना जा सकता है। सौदी में शायद फुटबॉल खेलने का मौका ही नहीं, अगरचे रहता तो भाईजान ज़रूर ज़िक्र करते।

दिल में उठी कसक को किसी तरह दिल ही में दबा कर शमीम घर की ओर चल पड़ा। घर पहुँचते ही उसने देखा कि भाईजान के दोस्त शाकिर भाई अब्बा से बातें कर रहे थे। बाज़ू वाले कमरे में भाईजान का भेजा हुआ संदूक खुला हुआ था और उसमें रखी चीज़ें

बिखरी हुई थीं। चिलमन की आड़ में अम्मी और सलमा आपा बड़ी दिलचस्पी से वसीम भाई और अब्बा की बातें सुन रहे थे।

"सलाम, शाकिर भाई।" बस्ता रखते हुए शमीम ने कहा।

"ओ हो, शमीम मियाँ। वालेकुम सलाम। बहुत बड़े हो गये तुम। गये सो वक्त देखा था तब इत्ते थे।"

शमीम शरमाकर चुप रहा।

"बोलो कब आ रहे हो सौदी? फ़हीम भाई बेसब्री से तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं।"

"दसवीं का नतीजा निकलते ही पहले सरटिफ़िकेटाँ वगैरा ले लेना, फिर चले जाना। तातीलों में टाइपिंग और ड्राइविंग भी सीख लेना।" अब्बा ने बतलाया।

"हौ, बहुत अच्छा। इन दोनों चीज़ों से तो उसकू नौकरी में अच्छा फायदा रहता।"

"शाकिर भाई, सलमा आपा भी अच्छी टाइपिंग कर लेती और शॉर्टहैण्ड भी सीखी है। सौदी में उसके वास्ते भी अच्छी नौकरी मिल जा सकनी ना?" शमीम ने भोलेपन से पूछा।

"चुप बेवकूफ़। हौलेपने के बाताँ नक्को कर।" अब्बा ने उसे डाँटा।

"शमीम मियाँ, सौदी में औरताँ नौकरी तो छोड़ो, घर के बाहर भी बहौत कम निकलती हैं।" शाकिर भाई ने जानकारी दी।

"और अब तो अच्छा-सा एक दूल्हा खोजना है, सलमा बेटी के वास्ते।" अब्बा ने सुनाया।

"लेकिन सलमा आपा तो यहाँ काम करने जाती हैं, फिर वहाँ पर भी जायें तो क्या नुकसान है। रही दूल्हे की बात। सो सौदी में भी अच्छे से अच्छे, पैसे वाले दूल्हे मिल सकते हैं।"

"शमीम!" चिलमन की आड़ से अम्मी चिल्लाई। तभी, अपने दूल्हे की बात सुन, सलमा शरमाकर अंदर चली गई।

मामला बिगड़ता देख बात बदलते हुए शमीम ने पूछा, "शाकिर भाई, भाईजान मेरे वास्ते कैमरा और स्टिरिओ भेजे हैं ना?"

"नहीं तो!" शाकिर भाई ने ताज्जुब जताया।

"नहीं भेजे!" शमीम एकदम रुआँसा हो गया।

"ऊहूँ, फ़हीम कह रहा था कि अब शमीम खुद सौदी आ रहा है। आते ही अपनी कमाई के पैसों से वह खुद सब कुछ खरीद लेगा।" शाकिर भाई ने इस कदर शरारती अंदाज़ से मुस्कराकर कहा कि शमीम को मालूम हो गया कि भाईजान ने उसके लिये कैमरा और स्टिरिओ याद से भेजे हैं।

कुछ दिनों बाद, अपना नया कैमरा लेकर ईद की नमाज़ पढ़ने शमीम अपने अब्बा के साथ चारमीनार के बाज़ू की जामा मस्जिद में गया। हर साल की तरह वहाँ इतने लोग आये थे कि उन्हें जामा मस्जिद के बाहर, सड़क पर, और चारमीनार की एतराफ़ अपनी नमाज़ पढ़नी पड़ी। शमीम ने चारमीनार, जामा मस्जिद और ईद के लिये खास सजे हुए बाज़ार की कई तस्वीरें खींचीं।

दोपहर के खाने के बाद शमीम आराम कर रहा था कि ईद मिलने परवेज़ आ गया। दोनों दोस्त प्यार से गले मिले।

"पायजामा और मलमल का कुरता तुम्हें बहुत जँच रहा है। चलो, कैमरे से तुम्हारी फ़ोटू निकालते।" परवेज़ ने कहा। फिर, शमीम को अनार के झाड़ के पास खड़े रखकर, नये कैमरे से उसकी फ़ोटो खींची। तभी शमीम की अम्मीजान कटोरे में बहुत-सा शीर-खुरमा ले आईं।

"अब्बा! इत्ता बहुत-सा?" परवेज़ कहे बिना नहीं रह सका।

"तो क्या हुआ? अब के इत्ता अच्छा बना है। सौदी के बादाम, पिस्ते का कमाल – जरा चखकर तो देखो!" शमीम ने कहा।

"तुम भी लो ना, साथ में।" परवेज़ ने नीले फूलों वाला कटोरा उठाते हुए कहा।

"नक्को। मैं अभी खाना खाया। पेट में बिल्कुल जगह नहीं है।"

"थोड़ा ले लो, शमीम। मालूम नहीं, आइन्दा ईद पे तुम यहाँ रहते या सौदी में। है ना अम्मी!" परवेज़ ने शरारत भरी आवाज़ में कहा।

"हौ बेटा, परवेज़ इतना बोल रहा तो थोड़ा-सा ले लो। मैं और एक कटोरा लाती हूँ।" अम्मी ने कहा। अगली ईद पर शायद शमीम नहीं होगा, यह सोचकर उनकी आँखें भर आई थीं। आँसुओं को पोंछते हुए वह बुदबुदाई, "बड़ा तो चले गया। तुम भी चले जाओगे। अगली ईद शायद गम में गुज़रेगी।"

"मैं हर साल आता रहूँगा, अम्मीजान। और थोड़े पैसे कमा लेने के बाद तो हमेशा के वास्ते लौट के आ जाऊँगा।" शमीम ने हामी भरी।

"शुरू में सब ऐसे बोलते हैं। मगर जब पैसे मिलने लगते तो सब बदल जाते। मगर क्या फायदा? इत्ता कमाने के बावजूद दिल को सकून नहीं।"

"सकून क्यों नहीं, अम्मीजान?" शमीम ने पूछा।

"तुम्हारे भाईजान का ही हाल देखो। शाकिर बोल रहा था, परसों नौकरी में तरक्की मिली तो उसके मुँह से यह खुशखबरी सुनने कोई उसके पास नहीं था। खुशी मनाने के बजाय घर वालों को याद करके गम करने लगा था। आज, ईद के दिन भी, वह सौदी में बोझिल बैठा होगा।" अम्मी कहती जा रही थीं और शमीम की आँखों के आगे बाहरी मुल्कों की बिल्कुल अलग-सी, कुछ डरावनी और कुछ परेशान करने वाली शक्ल घूमने लगी थी।

उस दिन से शमीम के मन में, बात-बात पर 'क्या सौदी में ऐसा हो सकता?' जैसे सवाल उठने लगे। जब पंद्रह अगस्त को उसकी फुटबॉल टीम ने कप जीता और उनके प्रिन्सिपल ने आगे चलकर ऐसे ही कप जीतते रहने और अपने वतन का नाम रखने की बात की, तो शमीम के मन में झट से बात उठी, 'सौदी में फुटबॉल के मैच

कहाँ होते? गैर मुल्क में अपने वतन का नाम रखने की बात ही कहाँ होती?'

इम्तिहान में उसे और परवेज़ को अच्छे नंबर मिले। तब परवेज़ ने खुश होकर कहा, "मैं ऐसे अच्छे से अच्छे नंबर लाऊँगा और मेडिकल कॉलिज में सीट हासिल करूँगा।"

शमीम को एकाएक महसूस हुआ कि अब आगे चलकर उसकी पढ़ाई कहाँ? दसवीं पास होते ही वह सौदी जाकर काम करने लगेगा।

उस रात अकेले में शमीम ने अपने अब्बा से कहा, "अब्बा, अगर मैं सौदी नहीं जाके यहीं रह जाऊँ तो?"

अब्बा ने हैरान होकर पूछा, "यहाँ रह के क्या करने? देख रहे नहीं, यहाँ अच्छी नौकरी मिलना कितना मुश्किल है। सारी जिन्दगी बैठे-बैठे बेकार जाती। बाहर जाओगे तो चार-छह सालों में अच्छा खासा कमाना शुरू कर सकते हो।"

"यहाँ पर अगर मैं आय टी आय नहीं तो पालिटेक्निक कर लूँ तो?"

"यह उत्ता आसान नहीं है। तुमकू मालूम है। और फ़हीम लिखा भी है कि वो तेरेकू सौदी में अच्छी नौकरी दिलवा देगा।" अब्बा ने कहा। लेकिन शमीम के मन के सवाल बस सवाल ही रह गये।

फिर एक दिन ऐसा आया कि शमीम उन सवालों के जवाब खुद खोजने पर मजबूर हो गया। हुआ यों कि मजीद साब ने एक दिन उसे बुलाकर बताया कि छुट्टियों में खास चुने हुए, फुटबॉल के उभरते खिलाड़ियों के लिये एक कोचिंग कैम्प लगने वाला है।

"तुम तो सौदी जा रहे ना? अगर जा रहे तो, तुमकू कैम्प भेजना बेकार होगा। किसी और कू कोचिंग लेने का मौका देना बेहतर रहेगा। इस महीने के आखिर तक नाम भिजवाने हैं, सोच के बताओ।" उन्होंने कहा।

"अब्बा बोल रहे हैं ··· यहाँ रहकर भी क्या करना है?" शमीम ने हिचकिचाते अपने जाने की बात बतानी चाही।

"कैकू? इत्ते सब और लोगाँ यहाँ नहीं रहते? ऊपर नहीं आते? तरक्की नहीं करते? नाम और पैसा नहीं कमाते?" मजीद साब ने ताव से सवाल पर सवाल खड़े कर दिये।

"फिर भी ··· यहाँ तो सब कुछ बहोत मुश्किल है। कॉलिज में दाखिला, नौकरी ···"

"तुमकू कौन से मुश्किलात है? सिर्फ फुटबॉल भी खेलते रहे तो भी पुलिस या बैंक में नौकरी मिल जाती। सही भी, शमीम, मेरेकू फुटबॉल में तुमसे बहोत उम्मीद है। और फिर, तुम तो पढ़ाई में भी अच्छे हौ। मगर तुमकू ही अपने मुल्क में नहीं रहना है तो अलग बात है।"

शमीम ने कुछ जवाब नहीं दिया। मजीद साब फिर झुँझलाए, "चुप क्यों बैठे है? खिलाड़ी हौ तुम। दिल में जो भी है वह साफ़-साफ़ बोल दो। तुमकू इस मुल्क में रहना पसन्द है या नहीं?"

"हौ, बेशक, बेशक! मेरेकू यहाँ रहना पसन्द लगता है।" दृढ़ता से शमीम ने जवाब दिया।

लौटते समय शमीम और परवेज़ ने मामले पर बहुत गौर किया। आखिर तय हुआ कि सौदी न जाने वाली बात फ़हीम भाई के आगे रखें और उनकी राय पूछें। उसी रात शमीम ने अपने भाईजान को लम्बा-चौड़ा खत लिखकर उनका मशविरा पूछा।

जल्द ही सौदी से जवाब आ गया। शमीम और परवेज़ ने मिलकर उसे पढ़ा। खत में फ़हीम भाईजान ने उन्हें हरदम सताने वाला अकेलापन और घर-वतन से दूर की मायूस ज़िंदगी के बारे में बहुत कुछ लिखा था। और, आखिर में सलाह दी कि यदि अच्छा खेलकर और अच्छी पढ़ाई करके वह हिंदुस्तान में ही अच्छी नौकरी या व्यापार कर सकता है तो उसे सौदी आने की कोई ज़रूरत नहीं।

खत पढ़कर खत्म हुआ। थोड़ी देर तक शमीम और परवेज़ एक-दूसरे को देखते रह गये। फिर खुशी से चिल्लाकर एक दूसरे से लिपट गये। बाद में भागकर शमीम ने मजीद साब को बताया कि उसने सौदी जाने का इरादा बदल दिया है।

"तो फिर मैं ज़रूर तुम्हें दो-चार सालों में नैशनल नहीं तो स्टेट टीम के काबिल बना देता हूँ। मगर कोचिंग कैम्प में जी-जान से मेहनत करना।"

शमीम ने हाँ कर दी।

शमीम का फ़ैसला सुनकर अब्बा कुछ चुप से हो गये। लेकिन अम्मीजान और सलमा आपा, दोनों खुश हो गये।

"मैं तुमकू मजबूर नहीं करना चाहता, मगर फिर सोच लो। फ़हीम तुमको अच्छी नौकरी दिलवाने वाला है।" अब्बा ने कहा।

"मेरा इरादा पक्का है अब्बा, मैं सब बाताँ सोच लिया। खूब पढ़के इंजीनियर बनूँगा। और अब्बा, फुटबॉल में नैशनल नहीं तो स्टेट खिलाड़ी बनके भी मेरेकू आसानी से नौकरी मिल सकती। मगर मैं पढूँगा और खूब पढूँगा। अपने वतन में ही रहके वतन का नाम ऊँचा करूँगा।"

सुनकर अब्बा की आँखों में उम्मीदों की चमक, दमक उठी और उनके होठों से निकला, "इन्शाअल्ला।"

आंचलिक शब्दावली

रात के बारह बजे

का भइल – क्या हुआ
केहू से – किसी से
जाला – जाता है
तुहूँ – तुम भी
तोहार – तुम्हारा, तुम्हारे
समझेला – समझता है
हमनी में – हमलोगों में
होखे देब – होने देंगे

दो पहेलियाँ

कन्ने – साथ
करदियाँ जाँघियाँ – करते जायेंगे
कियां – कैसे
कूल्लेच – नहर में
चली पौधियाँ – चल पड़ेंगे
भरोइयां – भरी होती हैं
मिन्जो – मुझे
सकनी आं – सकती हूँ
हुणी – अभी

गुड़-मंडी में

किंगे – किस तरह
घणी – ज़्यादा
थारा – तुम्हारा
नुके – मुझे
पिचाणा – पहचाना
रिया स – रहा था

आद्या की जीत

आई धरि – आज तक
एहि – इस
करतैक – करेंगे
जेकर – जिसका
ठाड़ छैं – खड़ी हो
तखनो – तब भी
भेलैक – हुआ
ससुरक – ससुर का
सेहे – वही

म्हारी सुन्दरी

जेही – यही
दामण – आँचल
दीदे – आँखें
धौरे – घर
नू – को
सेई – वही

मनीआर्डर

ईजा – माँ
ए जाल – आ जायेगा
के छू – क्या है
च्येल – लड़का
रोकणगे – रोकेंगे
सारणा – उठाना

सिरपुर के खंडहर

जायस – जा रहे हो
झन मार – मत हाँको
लाबारी – डींग
संझनिया बेला – शाम के समय

फ़ैसला

इच कू – इसको
तातीलों – छुट्टियों
तेरेकू – तुझे, तुझको
नक्को – नहीं
मुश्किलात – परेशानियाँ
मेरेकू – मुझे, मुझको

एक अनोखा संकलन

एक में अनेक की कहानियाँ विविधता लिए हैं। इन्हें पढ़कर बच्चे अनेक रूपों में बोली जाने वाली हिन्दी से परिचित हो सकेंगे और इस भाषा पर गर्व कर सकेंगे। ये कहानियाँ सामाजिक आचार-व्यवहार को भी ध्यान में रखकर लिखी गई हैं।

मुझे पूरी उम्मीद है कि बच्चों को ये कहानियाँ रोचक लगेंगी। इनकी एक खूबी यह भी है कि बड़े भी बच्चों की तरह इनका आनन्द उठा सकते हैं।

प्रयाग शुक्ल

रत्न सागर प्रा० लि०
विराट भवन, मुखर्जी नगर
कमर्शियल कॉम्पलैक्स, दिल्ली 110009
फोन : 7122505, 7216094
ब्रांच : 24 रामानाथन स्ट्रीट, टी. नगर
मद्रास 600017 • फोन : 4346325

ISBN 81-7070-189-9